स्वर्गोद्यान
बिना सांप
यशपाल

स्वर्गोद्यान : बिना सांप

यशपाल

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित

द्वितीय संस्करण
१९७८

मूल्य : ८.५०

लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

मर्कत द्वीप मारीशस !

आपके स्वर्गोद्यान में बिताये मास में आपकी उदार आत्मीय संगति में जानी, साम्राज्यवादी बर्बर शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष से आत्मनिर्णय के मानवीय अधिकारों को पाने की सफलता की गाथा और आपके विकासोन्मुख राष्ट्र के संघर्ष और समस्याओं का पौरुष से सामना करने की यह गौरव कहानो मारीशस की गौरवमयी जनता को समर्पित ।

यशपाल

माननीय डा० शिवसागर रामगुलाम
प्रधान मंत्री, मारीशस की
'स्वर्गोद्यान, : बिना सांप'
के लिये शुभकामना

"लेखक ने कलाकार की दृष्टि से हमारे द्वीप की प्राकृतिक छटा का मुंह बोला मनोरम चित्र पेश किया है। उसने हमारे अनेक नसलों सम्प्रदायों के मिश्रण, देश में सहअस्तित्व और सहयोग की आवश्यकता को सहानुभूति-पूर्ण मार्मिक दृष्टि से देखा, समझा और हमारे प्रयत्नों को सराहा है। अन्तरराष्ट्रीय समता-सहयोग की ऐसी मानवी दृष्टि ही विश्व कुटुम्ब की भावना और सफलता का आधार बन सकती है। मारीशस सद्भावना और मैत्री की इस अभिव्यक्ति का सराहना से स्वागत करता है।"

शुभकामना और बधाई के साथ

स्वर्गोद्यान : बिना सांप

•

संस्कृति, सेक्स, साहित्य,
साम्प्रदायिकता आदि प्रश्नों पर
खुली स्पष्टवादी चर्चा
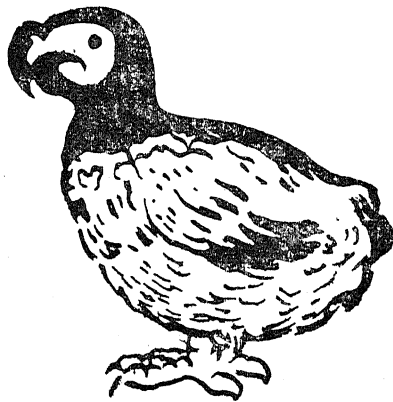
स्वर्गोद्यान बिना सांप

१३ जनवरी। सुबह पांच बजे। दिल्ली के पालम हवाई अड्डे की ओर जाते समय दांत बजा देने वाली सर्दी। कुहरा भरे आकाश में तारे भी जाड़े से ठिठुर कर क्षीणप्रभ। यान में बैठ जाने पर भीतर की गुन-गुनाहट, गरम नाश्ता-काफी से सुस्थ अनुभव किया। लगभग दो घंटे में बम्बई के हवाई अड्डे पर थे।

मध्याह्न में बम्बई से उड़ान। दो हजार नौ सौ बीस मील, हिन्द महासागर के ऊपर। दोपहर के भोजन के कुछ बाद सुनाई दिया—हम भूमध्य रेखा पार कर रहे हैं। भूमध्य रेखा के दक्षिण गोलार्ध में पहली बार प्रवेश। विचार आया, उत्तरी गोलार्ध में भरोसा रहता है कि हम पांव पृथ्वी पर जमा कर सिर आकाश में उठाये उठते-बैठते या चलते-फिरते हैं। सभी सम्प्रदायों के विश्वासों के अनुसार ईश्वर ने पृथ्वी को चपटा-चौसर बनाया है। मनुष्य पाताल की कल्पना नरक से भिन्न न कर सकता था। उस विश्वास से दक्षिणी गोलार्ध में पर्वतों-वृक्षों की जड़ें पृथ्वी के भीतर और प्राणियों के पांव पृथ्वी पर जमे रहने की स्थिति में, पर्वत-वृक्षों की चोटियां और प्राणियों के सिर—उत्तरी गोलार्ध से उलटे अधर में लटके रहने चाहिये।

अढ़ाई बरस पूर्व अमरीका जाते समय भी पाताल की कुछ ऐसी ही हास्यास्पद कल्पना याद आयी थी। वहां पहुँचने पर पाताल में होने की कुछ अनुभूति न हुई। एक समय सामान्य मनुष्य के लिये यह विश्वास

कितना कठिन था कि पृथ्वी गोल है और अपनी गति से चकई की तरह घूमती अधर में स्थित है। यह तथ्य अब निर्विवाद सर्वमान्य है परन्तु यह सत्य कहने के लिये कोपर्निकस और गैलीलियो को अपने प्राण देने पड़े।

संसार के नक्शों में कई बार हिन्द महासागर में मौरिशस नाम देखा था। इस नाम के साथ द्वीप की स्थिति का चिह्न, अच्छे बड़े नक्शे में भी राई के दाने से बड़ा न लगा था। पांच घंटे तीर की तरह अधर में बढ़ते जाने के बाद यान की गति अधोमुख होने का अनुमान हुआ। उत्सुकता से यान की खिड़की से झांक कर देखा, नीचे बादलों का असीम विस्तार। कहीं बादलों के फटाव में से बहुत दूर नीचे धुन्धला-धूसर नीला असीम सागर।

कुछ मिनट अधोमुख उड़ने के बाद यान ने घूमने के लिये अपना दाहिना डैना झुकाया तो नीचे झलक मिली, जैसे महावृक्ष का गहरा हरा छत्र असीम नीले जल के विस्तार में खड़ा हो। तीन-चार मिनट बाद यान बायीं ओर झुकने पर दूसरी ओर की खिड़की से गहरी हरी पहाड़ियों का विस्तार। हमारी घड़ी में संध्या के छः बज रहे थे। तभी सूचना मिली —हम कुछ मिनट में प्लेज़ान्स हवाई अड्डे पर उतरेंगे। इस समय मौरिशस द्वीप में दोपहर बाद साढ़े चार बज रहे हैं। द्वीप में पृथ्वी पर तापमान २६ अंश है।

यान के द्वार से निकले तो चौथे पहर की ढलती धूप स्थानीय गरम मौसम की। सुबह दिल्ली से कड़े जाड़े में चले थे। अब दोपहर बाद इस द्वीप का सबसे गरम मौसम। प्लेज़ान्स हवाई अड्डा पालम और सान्ताक्रूज़ के हवाई अड्डों की अपेक्षा बहुत छोटा है परन्तु लखनऊ, पटना, वाराणसी के हवाई अड्डों से अच्छा बड़ा।

यान की सीढ़ी उतर रहे थे तो कुछ सज्जन और महिलाएं अगुवानी के लिये आते दिखे। डाक्टर नन्दलाल को पहचाना, फिर श्री बखोरी को। नन्दलाल भारतीय संगीत की शिक्षा के लिये बहुत बरस लखनऊ के

'भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय' में थे। बैरिस्टर बखोरी भारत-दर्शन यात्रा के समय लखनऊ आये तो भेंट हुई थी। बखोरी द्वीप की राजधानी 'पोर लुई' के नगर-अधिकारी हैं; अंग्रेज़ी, फ्रेंच और हिन्दी के कवि और लेखक भी।

नन्दलाल और बखोरी ने अगुवानी के लिये आये सज्जनों का परिचय दिया—माननीय खेर जगतसिंह, मंत्री योजना और विकास; हिन्दी प्रचारिणी सभा के प्रधान, आर्य समाज के प्रधान, लेखक संघ के प्रधान आदि आदि। फूलमालाओं का गर्दन तोड़ बोझ, गुलदस्ते, कुशल-क्षेम। मौरिशस सरकार के निमंत्रण पर गये थे परन्तु एक लेखक के स्वागत के लिये इतना उत्साह। मौरिशसी जनता का यह उत्साह परोक्ष, परिचित लेखक व्यक्ति के लिये नहीं, हिन्दी भाषा, साहित्य और भारत के प्रति भावना समझा।

हवाई अड्डे के प्रतीक्षालय में उस समय वातानुकूलन काम न कर रहा था। हमारे शरीर पर दोहरे ऊनी कपड़ों के कारण हमारे लिये गरमी कुछ अधिक थी। स्वागत के लिये आये लोग सूती शूट पहने थे परन्तु वे हमारी अपेक्षा अधिक गरमी अनुभव कर रहे थे।

"हमें अनुमान है आप कैसे बर्फानी मौसम से आ रहे हैं," बखोरी ने वातानुकूल की खराबी के लिये खेद प्रकट किया, "यह हमारे यहां सबसे गरम मौसम है और इस बार, कई बरस बाद असाधारण गरमी।"

विश्वास दिलाया, गरमी से विशेष कष्ट नहीं महसूस हो रहा। जानना चाहा, यहां कितनी गरमी हो जाती है?

उत्तर मिला, २७-२८ अंश। कुछ निचले भागों में कभी ३१-३२ अंश तक भी। बखोरी मुस्कराये, "मालूम है, भारत में मई-जून में इस से कहीं अधिक गरमी हो जाती है और दिसम्बर-जनवरी में उतनी ही विकट सर्दी। हमारे यहां की कड़ी सर्दी में भी तापमान १६-१७ अंश से नीचे नहीं गिरता। हम लोग समशीतोष्ण के अभ्यस्त, मध्यमार्गी हैं।"

उत्तर भारत की तुलना में मौरिशस की ऋतु सदा बहार कही जा सकती। भारत में ३२-३३ अंश तापमान में आम लोग पंखा भी जरूरी नहीं समझते। परन्तु इस द्वीप में इतनी गरमी से लोग व्याकुल होने लगते हैं।

हवाई अड्डे से नगर की ओर जाते समय गरम ऋतु में वर्षा से धुले किसी पहाड़ी नगर की ओर बढ़ते जाने की रोमांचक अनुभूति। मकानों के सामने ऊंची हरी झाड़ियों की दीवारें, सुथरे जंगल, हरे-भरे टीले।

१३ जनवरी शनिवार था। माननीय योजना मंत्री का सुझाव था, हम १४ तारीख रविवार थकावट दूर करने के लिये विश्राम करें। भेंट-मुलाकात के कार्यक्रम पन्द्रह से आरम्भ हों।

डाक्टर नन्दलाल के अनुरोध से होटल के बजाय उन्हीं के यहां ठहरे।

१४ जनवरी रविवार। यात्रा की थकावट के विचार से पूर्ण विश्राम का अवसर दिया गया था परन्तु द्वीप की ओसजन भरी वायु ने रात भर में सब थकावट मिटा दी थी। दो-चार उत्साही युवक 'दर्शन' के लिये आ ही पहुँचे। वही भारतीय मुहावरा, हिन्दी का सरल-स्वाभाविक उच्चारण। उनसे चर्चा द्वीप की स्थिति के परिचय के लिये सहायक हुई।

डाक्टर नन्दलाल का छोटा बंगला द्वीप के शीतल भाग वाकोआ में है। मौरिशस की प्राकृतिक शोभा का प्रभाव नन्दलाल पर और नन्दलाल की रुचि और सूझ की झलक उनके मकान पर दिखते हैं। मकान और उसे घेरे बगिया तानपूरा के आकार में है। मकान के सामने फव्वारे पर पीतल में ढला यूनानी वाद्ययंत्र लाइरा और उस पर पश्चिमी संगीत के स्वर संकेत बने हैं। सब ओर स्वरों और संगीत के प्रतीक। नन्दलाल पूर्वी-पश्चिमी संगीत के आचार्य (पी-एच०डी०) तो हैं ही; साहित्यिक रुचि से पत्र-पत्रिकाओं में उनके रचनाएं-लेख भी प्रकाशित होते रहते हैं। वाकोआ हिन्दी परिषद के प्रधान हैं।

यहां जनवरी में हमारे लिये होली की सुहावनी बयार चल रही थी। चौथे पहर मेज़बान के सुझाव से घूमने निकल गये। नन्दलाल स्वयं सारथी।

रविवार के कारण दुकान-बाज़ार बन्द थे। वाकोआ में गलियों-सड़कों के दोनों ओर खूब वृक्ष हैं। वाकोआ ही एक वृक्ष का नाम है। कभी यहां इस वृक्ष के जंगल थे। अब भी पूरा स्थान वाकोआ की घनी हरियावल से छाया हुआ। बस्ती छोटी, सुथरी। बस्ती से निकलते ही हरे-भरे सुथरे जंगल। जंगलों में खूब बड़े-चौड़े पत्तों के, नारियल की अनेक जातियां और ताड़। उसके पड़ोस में डोरियों या सींखों जैसे पत्तों के पाइन, चीड़-देवदार से मिलते अनेक आकार-प्रकार के वृक्ष। बस्ती से कुछ दूर दक्षिण जाकर बायीं ओर नीले जल से लबालब विस्तृत झील। झील का नाम 'मारे वाकोआ'। फ्रेंच भाषा के शब्दों का अर्थ है वाकोआ का दल-दल।

इस झील के चारों ओर वाकोआ के बन विस्तार। किनारों पर दलदल बनी रहती है। झील वाकोआ की बस्ती से सात-आठ मील दूर है। इस ऊंचाई पर अधिक वर्षा के कारण झील भरपूर रहती है। यह झील द्वीप की दक्षिण बस्तियों के लिये जलाशय है। सड़क ऊंचाई पर जा रही थी। सात-आठ मील आगे टीलों से घिरी एक और झील। यह झील मारे वाकोआ का लगभग दशमांश है परन्तु नाम 'ग्रां बासे' (बड़ी झील)।

ग्रां बासे नाम शायद इस झील से अधिक ऊंचाई पर होने से है या झील के विशेष माहात्म्य के कारण। द्वीप में, इस झील पर जलक्रीड़ा और विनोद के लिये परियों के आने की लोक-कथायें प्रचलित हैं। यह झील 'परी ताला।' भी कहलाती है। द्वीप के हिन्दुओं के लिये यह सरोवर मौरिशस की गंगा है। नदी स्नान के सभी पर्वों पर द्वीप के हिन्दू दूर-दूर भागों से तीस-पैंतीस मील पैदल चल कर यहां आते हैं। विशेषतः शिवरात्रि के दिन भक्त इस सरोवर गंगा का जल ले जाकर शिव मंदिरों

में चढ़ाते हैं। उस समय यहां मेले में भक्तों और तमाशाइयों की इतनी भीड़ होती है कि यातायात के लिये पृथक मार्गों की व्यवस्था जरूरी हो जाती है।

परी तालाब के किनारे शिवजी और बजरंगबली के मन्दिर हैं। मन्दिर का पुजारी धोती और छोटी-सी पगड़ी पहने था। उसने बताया—सरोवर अतल है। इसका जल रिद्धि-सिद्धि दाता है। भक्तों ने भारत से गंगा-जल के कई कनस्तर ले जाकर इस सरोवर में डाल दिये हैं। गंगाजल के समान इस जल में भी कभी कीट-कृमि उत्पन्न नहीं हो सकते।

नन्दलाल पुजारी की बात सुनकर कनखियों से मुस्करा रहे थे। उन्होंने बताया, जल की गहराई नापी जा चुकी है, लगभग सत्तर-अस्सी फीट। परन्तु विश्वास का जादू भी कोई चीज़। हिन्दुओं के अतिरिक्त द्वीप के अनेक मुसलमान और कैथोलिक भी रोग-संकट से त्राण की आशा में यहां का जल ले जाते हैं। कुछ लोग दैवी सहायता की आशा में यहां मनौतियां भी मान जाते हैं। उन्हें लाभ होने का भी विश्वास है।

परी तालाब के किनारे मन्दिर बनाते समय सुरुचि और उपयोगिता का ध्यान रखा गया है। मन्दिरों के समीप आधुनिक ढंग के विस्तृत कथामण्डप या हाल बनाये गये हैं। कथामण्डप की दीवारें कांच की पारदर्शी हैं। बीचोंबीच आचार्य या व्यास की वेदी। चारों ओर श्रोताओं के लिये बेंचों के कई वृत्त। हाल का फर्श केन्द्र की ओर ढालू होने से पीछे बैठे श्रोताओं के लिये व्यास की वेदी ओझल नहीं हो जाती। कुछ भक्त या यात्री वहां रात बिताना चाहें तो जगह की सुविधा है।

१५ जनवरी, १९७३। प्रातः पश्चिम ओर खिड़की से 'त्रुआ मामेल' पहाड़ी की तीन चोटियां भीगी सुनहली किरणों में ललछौं भूरी दिखाई दे रही हैं। 'त्रुआ मामेल' का अर्थ 'त्रिस्तन' या तीन चोली। मकान के ऊपर छोटी तीसरी मंज़िल नन्दलाल का संगीत साधना कक्ष है। इस कमरे

की खिड़की से पश्चिम ओर नीले सागर का असीम विस्तार दृष्टि की सीमा तक। सब ओर भीगे वृक्ष और घनी हरियावल क्षितिज से झांकती किरणों से चकाचक। रात कुछ बरस गया था। यहां छोटे-छोटे बादल दिन-रात में किसी भी समय फुहार छोड़ते इधर-उधर निकल जाते हैं। सुहावनी खुनकी लिये बसन्त की गुदगुदाती बयार।

मेज़बान जान गये थे कि मुझे नाश्ते में कुछ फल रुचता है। मेज़ पर केले-पपीते, अनन्नास और संतरे का रस। इस बंगले में और सड़क से आते-जाते आम, लीची, केले, पपीते, कटहल, नारियल के पेड़ देखकर अनुमान हो गया था, भारत के अधिकांश फल यहां हैं और प्रचुर। सेब, संतरा, अलूचा आदि कठिनाई से हो पाते हैं। केले और पपीते की कुछ जातियों के आकार से तो विस्मय। नारियल के पेड़ इतने ऊंचे कि स्त्रियां बांह उठा कर फल तोड़ सकें। फल खूब सरस मीठे, प्यारी सुवास। संतरा-माल्टा प्रायः दक्षिण अफ्रीका से आयात होता है। यहां के अनन्नास का स्वाद और सुगन्ध अनुपम। आम का मौसम यहां नवम्बर-दिसम्बर है। जनवरी में स्वाद कुछ उतर गया था। छोटी जात के लाल-पीले अमरूदों के जंगल 'ग्रां बासे' की राह में देखे थे।

मौरिशस में निमंत्रण प्रधान मंत्री की ओर से था। उन्हें औपचारिक रूप से, पहुँच की सूचना और धन्यवाद देना उचित था। मौरिशस की राजधानी पोर्ट लुई (उच्चारण पोर लुई) नगर में है। वहीं सेक्रेटेरियेट, विधान सभा भवन और प्रधान मंत्री का निवास भी। पोर लुई द्वीप का मुख्य बन्दरगाह भी है।

नन्दलाल जी के मकान से हरियावल घिरे जंगलों के बीच गली लांघ कर दो-फर्लाङ्ग आये थे। उन्होंने छोटे मैदान के बीच एक छोटे मकान की ओर संकेत किया, "यहां पहले रेल का स्टेशन था। अब यह डाकघर है। हम लोगों के बचपन में छोटी-सी रेलगाड़ी—जैसी भारत में कालका से शिमला तक जाती है—यहां चलती थी। अब रेल की

पटरी उखाड़ दी गयी है। उसके स्थान पर बसों की सुचारु व्यवस्था है। द्वीप के सभी भागों में पक्की सड़कें और समय से बसों के आने-जाने की व्यवस्था से बहुत सुविधा है। यह द्वीप ही शायद ऐसा देश है जहां रेल नहीं।"

सड़क वाकोआ से उत्तर-पश्चिम की ओर उतर रही थी। बस्ती से कुछ ही दूर जाकर सड़क के दोनों ओर खेत। एक ओर आदमकद ऊंची ईख के खेत तो दूसरी ओर कमर से नीची चाय की झाड़ियों के बागान। भिन्न जलवायु की खेती एक ही स्थान पर, कुछ विचित्र लगा। उतराई पर सड़क कुछ और पश्चिम घूमी तो सामने अन्तरिक्ष तक नीले सागर का विस्तार। उत्तर ओर तट से कुछ अन्तर पर उजले सफेद बड़े-बड़े जहाज, सफेद पाल लगाये आती-जाती नौकायें। यह सड़क सागर तट के समीप टीलों पर से जाती है।

वाकोआ से छः-सात मील पर, यातायात की सुव्यवस्था के लिये गोल मैदान का यातायात द्वीप (राउंड पॉइंट) सेंट जॉन है। यहां कई सड़कें मिलती हैं। पोर लुई के लिये 'हाइवे' के ढंग की दोहरी सड़क है। बीच में फूलों की झाड़ियों की पट्टी देकर दोनों ओर तीन-तीन गाड़ियों के लायक सड़कें। हाइवे केवल बारह मील के लिये, परन्तु है ज़रूर। प्रकृति ने द्वीप को अपने सौन्दर्य का संग्रहालय बनाया है तो मनुष्य वहां अपने निर्माण में कोई न्यूनता क्यों रहने दे। बारह मील की इस सड़क पर लोग छः-सात मिनट, प्रति घण्टे सौ-सवा सौ किलोमीटर की गति से गाड़ी दौड़ाने का शौक भी पूरा कर लेते हैं।

पोर लुई तक दो नदियां, छोटी झीलें, झरने और दाहिने हाथ वृक्षों से भरी घाटियों के पर्वत नगर के आंचल तक। राजधानी की ओर बढ़ता मौसम बदलता जा रहा था। हवा में खुनकी न रही थी। धूप तेज लगने लगी। नगर की घनी बस्ती में गरमी थी। सड़कों पर अटूट पांतों में रेंगती गाड़ियां और दोनों ओर पटरियों पर कन्धे से कन्धा रगड़ती भीड़।

पार्लमेंएट भवन और सचिवालय बन्दर क सामने समीप ही हैं। सचिवालय के चारों ओर ऊँचे ताड़-नारियल और दूसरे विशाल सुन्दर वृक्ष। बन्दर के ठीक सामने स्तम्भ पर सागर में आते जहाजों की ओर चौकस नज़र, नगर को बसाने वाले फ्रेंच गवर्नर ला बूर्दोने की आदम कद मूर्ति है।

पोर लुई में सचिवालय से कुछ पहले नन्दलाल गाड़ी रोकते हुये बोले— "क्षण रुक कर एक अपने परोक्ष परिचित से साक्षात्कार कर लीजिये।"

गाड़ी एक दफ़्तरनुमा दरवाजे के सामने रुकी थी। दरवाज़े पर बोर्ड पर 'भाटिया प्रेस'। पुकार सुनकर सफेद कमीज़ पतलून में एक पूर्ण युवा, सुदर्शन व्यक्ति मुस्कराते हुये बाहर आया।

युवक को शायद पूर्व आभास था। मेरे मौरिशस पहुँचने का समाचार पत्रों में सचित्र प्रकाशित हो चुका था। व्यक्ति के हाथ नमस्कार में उठ गये। गदगद कंठ, 'वयं त्वाम् स्मरामो, वयं त्वाम् भजामो, वयं त्वाम् नमामो' संस्कृत का शुद्ध उच्चारण। श्लोक के अंश का अपने प्रयोजन से समयानुकूल प्रयोग। स्पष्ट था, मौरिशस के भारतीयों में हिन्दी के लिये ही नहीं संस्कृत के लिये भी अनुराग है।

भाटिया के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर सद्भाव के लिये आभार प्रकट किया।

भाटिया बोले, "यहां कठिनाई के बावजूद हिन्दी की आधुनिक विशेषत: आप की सभी रचनाएं पढ़ चुका हूँ, नयी की प्रतीक्षा है।"

प्रधान मंत्री के यहाँ ठीक समय पर पहुँचने की चिन्ता से जल्दी में थे। सुविधा से जम कर बातचीत के वायदे से आगे बढ़ गये। संध्या तक साहित्य के नाते परिचित पांच-सात व्यक्तियों से भेंट में, परोक्ष परिचय साक्षात्कार में बदल जाने का पुलक अनुभव हुआ। रचनाकार या कलाकार और कला प्रेमी का नाता निर्वैयक्तिक होने पर भी समीप का होता है।

प्रधान मंत्री के कार्यालय में निश्चित समय पहुँचे। प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। प्रधान मत्री डाक्टर सर शिवसागर रामगुलाम का कद मंझला, चेहरा गहरा सांवला, केश श्वेत, मोटा चश्मा। आयु तिहत्तर वर्ष। धारीदार चुस्त सूट में थे, कालर-टाई दुरुस्त। चेहरे पर आयु के शैथिल्य-थकावट, पोशाक में उपेक्षा का कोई लक्षण नहीं।

कुशल-मंगल के पश्चात् प्रधान मंत्री बोले, "हम लोगों को विशेषत: द्वीप के हिन्दी पाठकों और लेखकों को आपसे भेंट की बहुत उत्सुकता थी। इस अवसर से उन्हें बहुत संतोष होगा। लोग आपसे साहित्य के अनेक प्रसंगों पर विचार-विमर्श करेंगे। हमारे नवयुवक लेखक आपके परामर्श से अपने सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व को समझ कर प्रेरणा भी पायेंगे। भारत की तरह हमारे सामने भी, स्वतंत्रता पाने के बाद जनता का जीवन स्तर सुधारने, हमारी अति सीमित भूमि और साधनों से यथासम्भव आत्मनिर्भर बन सकने की समस्याएं हैं। हम अपने लक्ष्यों की लोकायत दृष्टि और समाजवादी प्रजातंत्रात्मक कार्यक्रम से ही पा सकते हैं। समाजवादी लक्ष्यों को समाज या जनता के सहयोग से ही पाया जा सकता है। उसके लिये संकीर्ण साम्प्रदायिक और जाति-वर्गभेद की सीमाओं से मुक्त होकर सामूहिक मानवीय हित की दृष्टि और व्यवहार अपनाना आवश्यक है। आपने अपनी रचनाओं से इसी विचारधारा को प्रोत्साहन दिया है। विश्वास है, हमारे लेखक आपसे ऐसा मार्गदर्शन और प्रेरणा पायेंगे।"

प्रधान मंत्री ने बताया, वे हिन्दी बोल-समझ लेते हैं परन्तु पढ़ने-लिखने का अभ्यास कम है। उनके परिवार में विशेषत: पत्नी और बेटियों को हिन्दी पुस्तकों में बहुत रुचि है।

अपनी तीन पुस्तकें भेंट के लिये ले गया था। इस भेंट के लिये रामगुलाम जी ने अपने परिवार की ओर से धन्यवाद दिया।

प्रधान मंत्री के विषय में पिछले दिन चर्चा सुनी थी। नवयुवकों के

स्वर में गर्व था—हमारा प्रधान मन्त्री प्रवासी भारतीय कुलियों की सन्तान है। वह लड़कपन में बैलगाड़ी हांकने की पगार किये है।···अपनी करनी और बूते पर जनता का विश्वास पाकर प्रधान मन्त्री के पद पर पहुँचा है। उससे अधिक सर्वसाधारण का सुख-दुःख समझने वाला और जनगण का हमदर्द दूसरा कौन होगा।

विद्यार्थी रामगुलाम अपने श्रम और योग्यता से छात्रवृत्ति पाकर चिकित्सा शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड गया था। वहां उसने अपनी योग्यता से अध्यापकों को प्रभावित किया। विद्यार्थी अवस्था में भी, ब्रिटिश पत्रों में मौरिशस की समस्याओं पर लेख लिखता रहा। रामगुलाम को कलम पर अधिकार है। विद्यार्थी अवस्था में लेखन उनके निर्वाह का भी सहारा रहा। द्वीप के प्रभावशाली दैनिक 'एडवांस' के संस्थापक भी वही हैं। लौट कर डाक्टर का पेशा आरम्भ किया परन्तु उससे अधिक सार्वजनिक सेवा और प्रजा के अधिकारों के लिए वैधानिक संघर्ष की लगन।

द्वीप में शिवसागर रामगुलाम की पीढ़ी और मौरिशस की प्रजा के स्वायत्त शासन के लिए संघर्ष का इतिहास समकालीन और एक-दूसरे की कहानी है। भारत ने स्वातंत्र्य संघर्ष का भी द्वीप की स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता रहा है। पहले विश्व महायुद्ध के अन्त तक मौरिशस, सौ बरस ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की निर्मम शोषक व्यवस्था से जकड़ा रहा।

द्वीप का अतीत :

द्वीप की वर्तमान समस्याओं के परिचय के लिए उसके इतिहास की संक्षिप्त झांकी उपयोगी होगी। यूरोप को मौरिशस का प्रथम परिचय सोलहवीं सदी में पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा की पूर्वी यात्राओं से मिला था। परन्तु पुराने इतिहासकार प्लिनी ने लिखा है कि मिस्रवासी ईसा से तीन सदी पूर्व भी इस द्वीप का अस्तित्व जानते थे। पुर्तगाली नाविकों को एक मूर जहाज की लूट में ऐसा मानचित्र मिला था जिसमें

इस द्वीप का चिह्न 'दीन अरबी' नाम से था। दीन अरबी शब्दों का अर्थ 'अरब की ज्योति'। कुछ ऐसे प्राचीन उल्लेख भी मिले हैं जो सोलहवीं सदी से पहले भी भारत, मलाया और अरब के नाविकों के इस द्वीप तक आने-जाने के प्रमाण हैं।

पुर्तगालियों ने इस द्वीप का नाम 'इल्हा दो किर्नो' (बड़े पक्षी का देश) रखा था। उस समय यहां एक बहुत बड़ा पक्षी 'डोडो' पाया जाता था। डोडो शरीर भारी और पंख छोटे होने के कारण ऊंचा या दूर तक न उड़ सकता था। मांस उसका स्वादिष्ट और शिकार आसान था। पुर्तगाली यहां प्रायः पचहत्तर बरस तक आते-जाते रहे। उन्होंने इस द्वीप में खेती और पशुपालन के कुछ प्रयत्न किये परन्तु सफल न हो सके। अलबत्ता वे डोडो पक्षी का बीज नाश कर गये। अब इस पक्षी के शरीर के दो ही भुस भरे नमूने रह गये हैं, एक पोर लुई के संग्रहालय में, दूसरा लन्दन के ब्रिटिश संग्रहालय में।

पुर्तगाल से यह द्वीप स्पेन ने छीना और स्पेन से १५९८ में डच लोगों ने छीन लिया। डच लोगों ने अपने तत्कालीन राजकुमार मौरिस के नाम पर इसका नाम मौरिशस रख दिया। इस द्वीप की स्थिति, यूरोप से एशिया और भारत के तत्कालीन सागर मार्ग, भारतीय महासागर में, नाके की है। इसलिए सुदूर पूर्व में साम्राज्य जमाने के महत्त्वाकांक्षी यूरोपियनों के लिए इस द्वीप का बहुत महत्त्व था।

डच लोगों ने भी द्वीप में खेती और पशुपालन आरम्भ किया। वे यहां गन्ने की राब और नारियल से शराब बनाने के उद्योग चलाना चाहते थे। द्वीप में इन कामों के लिये अम्बोयाना और भारत में छापे मार कर, या वहां से दास खरीद कर यहां लाये गये। नील और तम्बाकू की खेती भी शुरू की गई थी। बनों में प्रचुर लकड़ी चीरने के लिये, हमारे यहां की पनचक्कियों जैसे पानी-आरे भी लगाये। सब कुछ करके भी डच यहां जम न सके। वे १७१० में द्वीप छोड़ गये। १७१५ में फ्रांसीसियों ने

अपना झण्डा गाड़कर इस द्वीप का नाँम 'इल द फ्रांस'—फ्रांस का द्वीप रख दिया। उस समय भारत में पांव जमाने के लिए फ्रांस और ब्रिटेन में विकट होड़ चल रही थी। फ्रांस के लिये यह द्वीप 'स्तेला क्लाविस्के मारिस इंडिची' था। मौरिशस के राष्ट्रीय चिह्न पर अब तक ये ही शब्द हैं। अर्थ है—भारत महासागर की कुंजी का उज्ज्वल तारा।

फ्रांस (फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी) ने इस द्वीप को बसा कर अपना मजबूत गढ़ बना सकने के सभी यत्न किये। यहां बसने के लिये कुछ फ्रेंच सैनिक भेजे गये। फ्रांस में द्वीपान्तरवास (काला पानी) या आजन्म जेल की सज़ा पाये लोगों को यहां लाकर, स्वतन्त्र रूप में बस जाने के लिये मुक्त कर दिया गया परन्तु यह प्रयत्न सफल न हुये। अठारहवीं सदी के पूर्वार्ध में यहां बर्टरेंड ला बूर्दोने गवर्नर के पद पर आया। उसने द्वीप के दक्षिण-पूर्व में डच लोगों द्वारा बनाये 'ग्रां पोर्ट' बड़े बन्दर की कठिनाइयों के उपाय के लिये पश्चिमोत्तर में पोर लुई बन्दर (वर्तमान राजधानी) बनवाना आरम्भ किया। इस काम के लिये फ्रांस में इंजी-नियर बुलवाये गये। अफ्रीका में दासों के दल और कुछ कारीगर मज़दूर भी लाये गये। यह दास और मज़दूर बौद्धिक रूप से ऐसे कामों के योग्य न बन सके। ला बूर्दोने ने भारत में फ्रांस के अधीन स्थानों बंगाल, मद्रास, मालाबार और सूरत से १३७ कारीगर बुलवाये। यह लोग फ्रेंच इंजी-नियरों के निर्देश में काम करने लगे। फ्रेंच इंजीनियरों के चले जाने के बाद भारतीय कारीगर ही इंजीनियर बन गये। द्वीप बसने लगा। इस द्वीप को बसाने में भारतीयों का श्रम-सहयोग आरम्भ से मुख्य रहा। ईख, अच्छी लकड़ी आदि से आय के अतिरिक्त आमदनी का बड़ा स्रोत था मेडागास्कर और दक्षिण अफ्रीका से दास खरीद कर या पकड़ कर उनका व्यापार।

उस समय वहां धनोपार्जन की आशा में फ्रांस से पुरुष ही आते थे। यहां आकर उच्छृङ्खल जीवन। शनैः शनैः फ्रांसीसी पुरुषों और पुर्तगाली तथा डचों द्वारा भारत-अफ्रीका से लायी गई दास नारियों से दोगली

संतानों की संख्या चढ़ने लगी। इस मिश्रित नस्ल को क्रिओल कहा जाता है। यह स्थिति ला बूर्दोने की नजर में गौर वर्ण जाति की प्रतिष्ठा के लिये घातक थी। वह द्वीप को फ्रांस का उपनिवेश बनाने के लिए यहां शुद्ध फ्रांसीसी रक्त के लोगों, स्वामी वर्ग की स्थायी बस्ती बसा देना चाहता था। उसने भिन्न नस्लों के सहवास पर प्रतिबंध लगा दिये थे। उसने फ्रेंच सरका से अनुरोध किया कि द्वीप के फ्रेंच पुरुषों की जरूरत और संगति के लिये यहां फ्रांस से लड़कियां और स्त्रियां भेजी जायें। उस समय द्वीप में लगभग साढ़े तीन हजार फ्रांसीसी या यूरोपियन थे। फ्रांस सरकार ने फ्रांस के कई नगरों से साढ़े तीन सौ आवारा स्त्रियां और लड़कियों को पकड़वा कर यहां भेज दिया। इस प्रकार लायी गयी नारियों में कुछ का दावा फ्रांस के अभिजात वर्गों—राव, राजा, सरदार परिवारों की सन्तान होने का था। ऐसी नारियों के साथ गृहस्थ बसा लेने वाले गोरे और उनकी सन्तानें आभिजात्य का दावा करने लगे।

तीन-साढ़े तीन सौ गोरी नारियों के आ जाने से साढ़े तीन हजार गोरे पुरुषों की जरूरत पूरी न हो सकती थी। दोगली नस्ल की संख्या बढ़ती गयी। मिश्रित नस्लों में अनेक लोग रूप-रंग से आकर्षक भी होते हैं। अमरीका की तरह यहां भी इन दोगलों और गोरों के पुनः मेल से मिश्रित वर्ग तेजी से बढ़ने लगा। इस वर्ग में रक्त मिश्रण के विभिन्न अनुपात होते रहे। काले और गोरे के मेल से पहली पीढ़ी मुलाटो कहलाती है। मुलाटो और गोरे के मेल से पहली उत्पन्न सन्तान अधिक गोरी हो जाती है। ऐसे लोग क्वाडरून कहलाते हैं। क्वाडरून और गोरे की सन्तान ओक्टोरुन। ओक्टोरुन लोगों का वर्ण-आकार बहुत आकर्षक होता है परन्तु वे माने जाते हैं कलर्ड या काले। ओक्टोरुन और गोरे की संतान को (अमरीका में) गोरा मान लिया जाता है।

द्वीप के अनेक गोरे भूपति अपनी दोगली सन्तानों के प्रति वात्सल्य में उन्हें अपनी सम्पत्ति का अंश या पूरा उत्तराधिकार भी दे देते थे।

ऐसे लोगों के लिये सरकारी काम या व्यवसायों में अच्छे वेतन की नौकरी पा लेना भी सुलभ था। यौरोपियन इस वर्ग को नीचा मानते हैं परन्तु इन्हें भारतीय और काले लोगों की अपेक्षा अपना समीपी और विश्वासपात्र मानते हैं। द्वीप की जन-संख्या में इस वर्ग का अनुपात शनैः-शनैः बढ़ता गया है।

फ्रांसीसी अपने उपनिवेशों में बोली जाने वाली अपभ्रंश फ्रांसीसी भाषा को क्रिओल कहते हैं। फ्रांस की भूमि से दूर अन्य देशों, उपनिवेशों में उत्पन्न या दोगली नस्लों को भी क्रिओल कहा जाता है। क्रिओल शब्द में कुछ हीनता की ध्वनि है इसलिये मौरिशस में मिश्रित नस्ल का वर्ग क्रिओल कहलाना पसन्द नहीं करता। वे लोग स्वयं को 'कैथोलिक' या कलर्ड कहते हैं।

फ्रांसीसी जिन भारतीय या अफ्रीकी दासों को द्वीप में लाते थे उन्हें प्रायः सामूहिक रूप से समुद्र तट पर बपतिस्मे की रस्म की डुबकी दिलवा कर कैथोलिक (ईसाई) बना लेते थे। यह क्रम इस शताब्दि के आरम्भ तक भी चलता रहा। अब तक जन श्रुति है—'सुन्दरन को डुबकी दी, जल से निकला सेमसन।" अस्तु द्वीप के आधुनिक प्रजातंत्र में इस कैथो-लिक वर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

द्वीप अंग्रेजों के हाथ आने का प्रसंग भी आवश्यक है। अठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में भारत में पांव जमाने के लिये ब्रिटेन और फ्रांस की होड़ के कारण इस द्वीप पर अंग्रेजों की नज़र थी। सन् १८१० में अंग्रेजों ने चौदह हजार जल-थल सेना लेकर, जिसमें एक तिहाई भारतीय सिपाही थे, द्वीप को घेर कर आक्रमण कर दिया।

उस समय द्वीप में फ्रांसीसी सरकार की स्थिति डगमग थी। अठा-रहवीं सदी के अंत में फ्रांस में राज्य क्रान्ति हो गई थी। फ्रांस में स्वतंत्रता समता, सब मनुष्य भाई-भाई के नारों का बोल-बाला था। उसके पूर्व अमरीका ने दास प्रथा समाप्त कर दी थी। सम्पूर्ण सभ्य संसार दास

प्रथा का विरोध कर रहा था। फ्रांस से द्वीप में भी दासों को स्वतन्त्र करके उनके श्रम की मजदूरी देने के आदेश भेजे गये थे। द्वीप के फ्रांसीसी भूस्वामी और दास व्यापारियों ने इन आदेशों को ठुकरा कर द्वीप को फ्रांस से स्वतंत्र घोषित कर लिया था।

अंग्रेज़ी सेना के कमाण्डर ने कूटनीति से द्वीप के फ्रांसीसी भूस्वामियों और शासकों को आश्वासन दिया, यदि वे अंग्रेज़ों के कब्ज़े का विरोध न करके उन्हें सहयोग दें तो द्वीप में उनके भूमि और दासों के स्वामित्व के अधिकारों, उनके, धर्म, भाषा और संस्कृति की यथावत रक्षा की जायगी। द्वीप की फ्रांसीसी सेना के नमक हलाल काले और मिश्रित नस्ल के सिपाही द्वीप की रक्षा के लिये जी-जान से अंग्रेज आक्रमण से लोहा ले रहे थे परन्तु फ्रांसीसी शासकों और भूस्वामियों ने अपने राष्ट्रीय सम्मान, देश भक्ति या स्वतंत्रता की कुछ भी चिन्ता न कर अंग्रेज़ों से समझौते के लिये हथियार डाल दिये। द्वीप पर ब्रिटिश शासन कायम हो गया। यह क्रम पन्द्रह बीस बरस चला, अंग्रेज़ों के कदम जम जाने पर ब्रिटिश पार्ले-मेंट के आदेश से द्वीप में दास प्रथा समाप्त कर दी गयी। शनैः-शनैः शासन में अंग्रेज़ी का उपयोग होने लगा परन्तु द्वीप की सामाजिक भाषा फ्रांसीसी रही।

द्वीप में दास प्रथा तो समाप्त हो गयी परन्तु खेती और द्वीप के विकास के लिये श्रमिकों की आवश्यकता थी। द्वीप में उतने आदमी न थे। उस प्रकार के आभिजात्य का गर्व करने वाले और शोषण के अभ्यस्त गोरों के बस का न था। उपाय था, अन्य देशों से श्रमिकों को लाना।

यूरोप में यह समय मशीनों के अविष्कार ने औद्यौगिक विकास का था। यूरोप की बढ़ती आबादी अन्यत्र निर्वाह क्षेत्रों के लिये अमरीका, दक्षिण अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि जा रही थीं। दूसरी ओर भारत में अपने कदम जमा लेने के बाद अंग्रेज ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत के बाजारों में अपने माल की खपत बढ़ाने के लिये वहां के समस्त उद्योगों

को भी समाप्त कर रही थी। उसके परिणाम में, बढ़ती जनसंख्या में बेकारी और अर्थ संकट। उनके लिये जीविका का एक मात्र साधन सीमित धरती पर खेती। तिस पर अंग्रेज़ों द्वारा धरती पर बढ़ाये गये लगान। अंग्रेज़ों ने मौरिशस में श्रमिक लाने के प्रयोजन के लिये भारत को चुना।

आधुनिक मौरिशस की मनोरमता ओप रंगीनियों में रम जाने से पूर्व उस सांझ नन्दलाल के बंगले पर आये सज्जनों से बातचीत का संक्षेप बता दूं। वह चर्चा द्वीप की आन्तरिक समस्याओं और भारतीय रक्त की प्रजा की भावना समझने में सहायक होगी। मुख्य प्रसंग भारतीय शर्तबंद मजदूरों के द्वीप में लाये जाने और उनके यहां बस जाने की प्रक्रिया और परिस्थितियों का था।

द्वीप में खेती के लिए जैसे कठिन श्रम की आवश्यकता थी, मजदूरों के लिये निवास और निर्वाह की जैसी परिस्थितियां थीं, सन्देह था कि कोई श्रमिक यहां स्वेच्छा से अनेक बरस रहना चाहेगा। मजदूरों को भारत से लाने के व्यय का भी प्रश्न था। इसलिये भारत से मजदूरों को खास शर्तों पर (इंडेचर्ड लेबर), पांच वर्ष मजदूरी की अवधि की शर्त पर भरती करके लाया गया। गांवों में ऐसी शर्तबंद मजदूरी को गिरमिट (एग्रीमेंट) की मजदूरी कहा जाता था।

भारत में अंग्रेज़ों के मजदूर-भरती के दलाल गांव, देहात में जीविका या ज़मीन के लिये परेशान लोगों को मौरिशस के स्वर्गोद्यान में सोना बरसने के स्वप्न दिखा कर भरती करवा देते थे। इस कारगुजारी के लिये दलाल को प्रति मजदूर, मजदूर को मिलने वाले वेतन से अधिक कमीशन दिया जाता था। दो-तीन मास का वेतन पांच रुपया प्रति मास के दर से लेकर गिरमिट पर अंगूठा लगा देने के बाद गिरमिट (शर्तबंद) मजदूर लगभग विवश कैदी बन जाते थे।

भारतीय ग्रामीणों को तमाशे-नौटंकी के बहाने बटोर करके मौरिशस वैभव के सुनहरे स्वप्न दिखाये जाते। प्रलोभन दिये जाते। पांच रुपया

तनखाह तो दो-चार घंटे के काम की। आदमी काम करे तो इससे चार-छः गुना कमा ले। शर्तबंदी के लिये सपरिवार मजदूर बेहतर समझे जाते थे ताकि उनकी स्त्रियां और बच्चों को भी आधी पौनी मजदूरी देकर काम लिया जा सके। ऐसे लोगों का द्वीप से जल्दी लौटना अधिक असाध्य होता और उनके द्वीप में अधिक समय बने रहने का भरोसा रहता। पांच-पांच, सात-सात सौ मजदूर पुरुष-स्त्रियों-बच्चों से लदे जहाज मौरिशस पहुँचने लगे।

मजदूर द्वीप में पहुँच कर भरती-दलालों द्वारा दिखाये स्वप्नों के बजाय कुछ और पाते। बीहड़ जंगलों में केवल ईख के खेत और चीनी मिलें। शर्तबंद मजदूरों को अपनी मजदूरी के क्षेत्र में ही कतारों में बनी झोपड़ियों में रहना अनिवार्य था। निश्चित सीमा के बाहर बिना अनुमति जाना दण्डनीय अपराध। प्रति मर्द मजदूर को पांच रुपया प्रतिमास पगार के साथ चौबीस सेर मोटा चावल, एक सेर दाल, एक सेर सूखी मछली, सात-सात छटांक नमक और तेल दिया जाता था। स्त्रियों की पगार तीन रुपया मासिक और राशन पन्द्रह सेर चावल के अनुपात में। लड़के-लड़कियों की मजदूरी आधी। लड़कों के लिये भी मजदूरी करना अनिवार्य। यदि कोई भारतीय मजदूर अपने बेटे से मजदूरी न करा कर उसे पढ़ाना चाहे तो इस गुस्ताखी के लिये मार-मार कर उसका भुड़ता बना दिया जाये और लड़के को मजदूरी पर लगाना पड़े। सूर्योदय के पूर्व से सूर्यास्त के बाद तक काम—मालिक को जिस-जैसे काम की जरूरत हो। बैलों, घोड़ों की कमी के समय हल या गाड़ी खींचने तक के काम। दिन में दो बार आधे-आधे घंटे की फुर्सत, चबेना-पानी या नाश्ता-आहार के लिये। नाश्ते-आहार से मतलब आराम से बैठकर खा सकना और बीड़ी फूंकने या तम्बाकू फांकने के लिये दस मिनट विश्राम नहीं। नाश्ता-खाना खड़े-खड़े करने का हुक्म ताकि मजदूर का शरीर जुड़ा कर अलसा न जाये। काम के घंटों में बीड़ी फूंकने या सुरती फांकने के लिये रुकने पर

हंटरों और बेतों की मार। काम में शैथिल्य जान पड़ने पर लाठी, बेत, हंटर, कोड़े। संटियों, बेतों या लकड़ियों की मार ऐसी कि प्रायः संटियां और बेत, टूट जाते। इस प्रयोजन के लिये खेतों और मिलों में नित्य सुबह गाड़ी भर संटियां पहुँचा दी जाती थीं। किसी भी कारण एक दिन के नागे के लिये दो दिन की पगार और राशन ज़ब्ती का जुर्माना। मजदूरों की पगार का एक अंश जमानत के तौर पर मालिक के यहां अवधि के अंत तक जमा होता रहता था। परिस्थितियां असह्य होने पर भी अवधि से पूर्व मजदूरों के लिये स्वदेश लौट सकना सम्भव न होता था। असाध्य श्रम, उस पर मार और अपमान असह्य हो जाने पर मजदूरों के फांसी लगा कर या डूब कर आत्म-हत्या की घटनायें असाधारण बात न मानी जाती थीं। एक नाले का नाम ही 'कालों की आत्म-हत्या का नाला' पड़ गया है।

कहने को शर्तबंद मज़दूरी थी। व्यवहार में पूर्णतः दास प्रथा। दास प्रथा के बजाय शर्तबंद मजदूरों से लाभ मालिकों का ही था। उन्हें आदमी खरीदने के लिये बड़ी रकमें न देनी पड़तीं। आदमी के अच्छी मेहनत लायक रहते तक बहुत कम मज़दूरी दे कर छुटकारा। क्रीत दासों की ही तरह शर्तबंद मजदूरों की भी इच्छा या उन्हें अपने विषय में निर्णय का कोई अवसर न था, शायद आत्म-हत्या के अतिरिक्त शर्तबंद मजदूरों को न केवल अपनी सन्तान को शिक्षा दिला सकने का अवसर न था, उन्हें स्वयं साफ कपड़े पहनने तक का भी हक न था। मजदूर का साफ कपड़ा पहनना, उसका मनुष्य समझे जाने या सफेद-पोश बनने को अहंकार या धृष्टता समझी जाती। साफ़ कपड़े पहनने का अपराध करने पर मजदूर के कपड़ों पर मौलेसिस—चीनी मिलों का चिपचिपा कूड़ा छिड़ककर उन्हें धूल-कूड़े में गिराकर, लोट-पोट करके घसीट दिया जाता। इस अनुष्ठान के साथ बेतों की दक्षिणा।

शर्तबंद मजदूरों को अपनी सन्तानों के विवाह निश्चय करने तक

की स्वतंत्रता न थी। मालिक चाहते थे, लड़के-लड़कियों के ब्याह जल्दी से जल्दी हों और नये मजदूर पैदा हों। जब मालिकों या उनके गुमाश्तों को सनक आ जाती, अपने क्षेत्र के अनब्याहे लड़के-लड़कियों को दो पाँतों में खड़ा करा कर हुक्म दे दिये जाते—फलां नम्बर मर्द फलां नम्बर औरत की शादी हो गयी। इस निर्णय में किसी आपत्ति या दुहाई का अवसर नहीं। उसके साथ पुरातन पुरोहित तंत्र या सामन्त तंत्र के मालिकों के विशेषाधिकार; नव वधू को पति के प्रथम सामीप्य से पूर्व एक रात मालिक या उसके गुमाश्तों की सेवा में रहने की मजबूरी। यह सब झेला था, आज स्वतंत्र मौरिशस के, भारतीय रक्त के अब गर्व से सीना फुलाये युवाजन के पूर्वजों ने। उन्हीं लोगों के रक्त-पसीने से मौरिशस के बीहड़ जंगलों ने स्वर्गोद्यान का रूप पाया।

पांच वर्ष की अवधि के बाद यह मजदूर अपने मालिक के इलाके की सीमा से अन्यत्र रहकर स्वतंत्र मजदूरी कर सकते थे। अपनी आय की बचत से साग-सब्जी या छोटी-मोटी खेती के लिये धरती का टुकड़ा खरीद सकते थे। यह थी स्थिति मौरिशस में भारतीय रक्त की वर्तमान पीढ़ी के पूर्वजों के द्वीप में बसने की। आज शायद कोई ही भारतीय मैरिशसी, भारत लौट आने के लिये उत्सुक मिलेगा। उस समय की परिस्थितियों में, १८८६ से १८६६ तक ४८१६६ भारतीय मजदूर वहां गये थे। लौटने में कठिनाइयों के बावजूद इस अवधि में लौट आने वालों की संख्या ५०५०० थी।

उस रात देर तक नींद न आयी। सन्देह हुआ, शायद यह लोग अपने पूर्वजों की बीति को कल्पना से बढ़ा कर कह रहे है। परन्तु सन्देह देर तक न रहा। याद आ गया, यूरोप या अन्य देशों में भी दास प्रथा के समय प्रभु और आभिजात्य वर्गों के विनोद के लिये ज़िन्दा दासों को शेर-चीतों के सामने फेंककर तमाशा देखने के अधिकार और प्रथा थी। मौरिशस भेजे जाने वाले मजदूरों का रक्षक या उनकी सुनने वाला था कौन ?

जैसे बदलती परिस्थितियों और सभ्य मानव की न्यायबुद्धि ने दास प्रथा को समाप्त किया था उसी प्रकार शर्तबंद मजदूर की अर्ध दास प्रथा के विरुद्ध भी संसार भर और भारत में विरोध की पुकार उठ रही थी। इस अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में गांधी जी और अन्य भारतीयों में डा० मनीलाल आदि का योगदान महत्त्वपूर्ण था। भारत में शर्तबंद मजदूर प्रणाली के विरुद्ध आन्दोलन के कारण ब्रिटिश भारत सरकार ने १६२४ में कुंवर महाराजसिंह को उस द्वीप में शर्तबंद मजदूरों की स्थिति के निरीक्षण के लिये भेजा था। महारजसिंह ने मजदूरों की असह्य स्थितियों का जैसा वर्णन किया, उसके परिणाम में सन् १६२८ में शर्तबंद मजदूर प्रणाली को कानूनन समाप्त कर दिया गया।

शर्तबंद मजदूरी समाप्त हो जाने से द्वीप की स्थिति बदली। भारतीय खेत-मजदूर खेती के लिये धरती खरीदने लगे। परिश्रमी और मितव्ययी होने के कारण वे भूमिहार या भूधर बनने लगे। कई-कई एकड़ धरती उन लोगों ने अपना ली। अपनी सन्तान की शिक्षा की ओर भी उनका ध्यान गया। उस समय तक द्वीप में अगोरे या भारतीयों के वंशजों को कोई राजनैतिक अधिकार न थे। कहने को वहां प्रतिनिधि शासन था। जनता के यह प्रतिनिधि केवल गोरे समृद्ध वर्ग द्वारा चुने जाते थे। जनता के अधिकांश प्रतिनिधियों की नियुक्ति ब्रिटिश गवर्नर जनरल स्वयं कर लेता था।

मौरिशस बहुजाति (मल्टी रेशल) और अनेक भाषा-भाषी देश या राष्ट्र हैं। जनसंख्या में विभिन्न जातियों का अनुपात इस प्रकार है;—प्रमुख भाग भारतीयों के वंशज, लगभग ६३ प्रतिशत हैं। परन्तु भारत विभाजन के बाद से भारत से गये मुस्लिमों के वंशज स्वयं को भारतीय के बजाय पाकिस्तानी कहना चाहते हैं। जब उनकी गणना पृथक की जाती है। भारतीयों के वंशज हिन्दू कहे जाते हैं। उनका अनुपात ४६ प्रतिशत है। मुस्लिम १४ प्रतिशत, अगोरे कलर्ड ३१ प्रतिशत, चीनो ३ प्रतिशत,

यूरोपियन गोरे दो प्रतिशत ।

द्वीप में ब्रिटिश शासन काल में स्वायत्त शासन के लिये निरंतर आन्दोलन होते रहे । १९३७ और १९०३ में यह आन्दोलन बहुत उग्र हो गये थे । भारत की राजनैतिक मुक्ति का प्रभाव इस द्वीप पर भी पड़ा । १९४८ में वहां सम्पत्ति के बजाय साक्षरता के आधार पर मताधिकार का नियम हो गया तो भारतीय मौरिशसी अच्छी संख्या में विधान सभा में निर्वाचित हो गये । इसी चुनाव में शिवसागर, रामगुलाम भी निर्वाचित हुए थे । विधान सभा में आते ही वे द्वीप में स्वायत्त शासन के लिये संघर्ष के मोर्चे पर आगे आ गये । उनकी मांग द्वीप के सम्पूर्ण वर्गों के लिये संयुक्त रूप से आत्मनिर्णय के अधिकार के लिये थी । इसके लिये उन्होंने द्वीप के मजदूर दल, इंडिपेंडेंट-पार्टी और मुस्लिम कमेटी आफ ऐक्शन का संयुक्त मोर्चा अपनाया । इस संयुक्त संघर्ष से १९५९ में द्वीप को बालिग मताधिकार पाने में सफलता मिल गयी । इस सुधार से प्रजातंत्र भावना और जनशक्ति को और बल मिला । पूर्ण स्वायत्त शासन और स्वतंत्रता के लिये आन्दोलन आरम्भ हो गया । डाक्टर रामगुलाम उस समय भी द्वीप के मुख्य मंत्री थे ।

मौरिशस का गौर वर्ग और उनके प्रभाव में कुछ अगोरे या कैथोलिक लोगों को भी आशंका रही है कि बालिग मताधिकार के आधार पर पूर्ण स्वायत्त शासन या स्वतंत्रता का अर्थ होगा, द्वीप में भारतीय हिन्दू बहुमत का राज कायम हो जाना । ऐसे लोग द्वीप की स्वायत्ता और स्वतंत्रता का विरोध करते रहे थे परन्तु रामगुलाम के नेतृत्व में संयुक्तदल का बहुमत इस संघर्ष के लिये जुट गया । अन्ततः १२ मार्च १९६८ के दिन मौरिशस में यूनियन जेक का स्थान स्वतन्त्र मौरिशस के राष्ट्रीय झण्डे ने ले लिया और मौरिशस स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में ब्रिटिश राष्ट्र मंडल का सदस्य बन गया । द्वीप में स्वायत्त शासन या स्वतंत्रता के आन्दोलन की सफलता में भारतीय समुदाय के सहयोग और रामगुलाम के नेतृत्व का बहुत प्रभाव
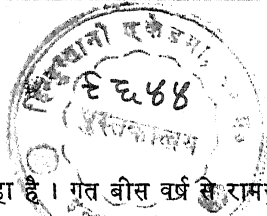
रहा है। गत बीस वर्ष से रामगुलाम द्वीप की राजनीति और शासन का नेतृत्व प्रधान मंत्री के पद से करते आ रहे हैं। मौरिशस के राष्ट्र ध्वज में काले, पीले, लाल, हरे चार रंगों की पट्टियां हैं।

प्रधान मंत्री से भेंट के पश्चात् योजना और विकास मंत्री के यहाँ गये। मौरिशस के योजना और विकास मंत्री खेर जगतसिंह सक्रिय राजनीति में आने से पूर्व पत्रकार रहे हैं। वे सफल लेखक हैं। उन्हें फ्रेंच और अंग्रेज़ी में समान गति है।

प्रधान मंत्री और योजना तथा विकास मंत्री से भेंट के बाद सचिवालय से निकले तो बारह बज रहे थे। स्वच्छ नीले आकाश के कारण आंखें चौंधियाती धूप। सूर्य के अदृश्य बाण शरीर को बेध रहे थे। पोर लुई की दो-तीन-चार मंज़िल की इमारतें और सीमेण्ट पटी सड़कें तप रही थीं। बाजारों में सवारियों और पदातियों की ठसाठस भीड़। बम्बई जैसी उमस भरी गरमी, परन्तु साथ लगे बन्दर की ओर से समुद्री हवा के झोंकों के कारण गरमी असह्य न थी।

पोर लुई में गरमी है परन्तु सौन्दर्य और रौनक भी। उत्तर-पश्चिम की ओर बन्दरगाह में भरे जहाजों के पीछे क्षितिज तक नीले सागर का नाम तोम्बू की खाड़ी है। दूसरी ओर हरियावल ढकी अर्धचन्द्राकार पहाड़ियों की शृङ्खला का परकोटा। पहाड़ी पर पुराने समय का किला है। इस लम्बी पहाड़ी में दो चोटियां हैं। खाड़ी के तट की ओर झुकी चोटी का नाम 'ल पितर बोथ' है, आकार मानुस चेहरे जैसा। जैसे समुद्र की बेचैन लहरों को शांति का आदेश दे रहा हो। भारतीय इसे अपनी बोलचाल में मुड़िया पहाड़ कहते हैं। दूसरी चोटी 'ल पूस' इसका आकार जैसे मुट्ठी उठा कर अंगूठा या ठेंगा दिखाया जा रहा हो।

उमस और गरमी के बावजूद नगर की झांकी के लिये उत्सुकता थी। बाज़ार बम्बई में फोर्ट के इलाके जैसे। दुकानें प्रायः भारतीयों के वंशज हिन्दू-मुसलमानों और चीनियों की। द्वीप में अधिकांश चीनियों की

जीविका दूकान या रेस्त्रां से है। चीनी दुकानों पर प्रायः युवतियां बैठती हैं। कुछ भारतीय युवतियां भी दुकानों पर काम करती हैं। आयात-निर्यात के बड़े व्यापार, बैंक और चीनी मिलें यूरोपियनों के हाथ में। भारतीय बैंक भी हैं 'सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया' और 'बड़ौदा बैंक, की शाखायें हैं। बड़ौदा बैंक की शाखायें बहुत से उपनगरों में भी हैं। पोर लुई में एक पाकिस्तानी बैंक, हबीब बैंक भी है।

फल और सब्जी मंडी देखकर अपना देश याद आ गया। केला, पपीता, नारंगी, आम और अनन्नास। यहां का अनन्नास कुछ छोटा और सिन्दूरी-सुनहरी रंग का, अति मोहक सुवास। कई तरह की मिर्चें, प्याज लहसुन के ढेर। आलू, बैंगन, कटहल, गोभी, लौकी, भिंडी पालक सब कुछ। तराजू प्रायः मशीनी। बहुत से दुकानदारों के हाथ में भारतीय ढंग के भी तराजू परन्तु पोशाक कमीज-पतलून। कई जगह तराशे हुए अनन्नास और चटनी के खोमचे। खोमचे धूल और मक्खी से बचाव के लिये कांच मढ़े बक्सों में।

चटपटा खोमचा देख कर स्त्रियों-लड़कियों की जिह्वा कैसे न पसीजे। प्रकाशवतीजी और नन्दलाल की भतीजी ने कागज की तश्तरियों में अनन्नास की फांकें और चटनी ले ली, गाड़ी में बैठ कर चटकारने के लिये। चाट के प्रति नारी का आकर्षण केवल भारत में ही नहीं, यूरोप, अमेरिका और सोवियत में भी है।

पोर लुई में रेस्त्रां की भरमार है। विशिष्ट रेस्त्रां चीनी और भारतीय हैं। सजावट चीनी और भारतीय प्रभाव लिये। बैठने की व्यवस्था यूरोपियन। भोजन अनेक तरह के। प्रायः सभी रेस्त्रां में बार। दो भारतीय रेस्त्रां खास प्रसिद्ध हैं, 'कारी पूले' (करी पत्ता) और 'रॉकिंग बोट' (डोलती नैया)।

नारी को चाट की चाह तो मर्द को बियर के नाम से प्यास क्यों न लगे। खासतौर पर धूप और गरमी में। नयी जगह में नयी वस्तु के

परिचय की भी इच्छा। डोलती नैया के वातानुकूलित छोटे तंग बार में सब रंग-ढंग जहाज के बार का। बैठने के लिये बियर के पीपे, अनौपचारिक स्वच्छन्दता। बियर की परख का दावा नहीं है परन्तु मौरिशस की 'फीनिक्स' बियर बहुत अच्छी लगी, चेक और जर्मन बियर के स्वाद-स्तर की। बार में यूरोपियन और अमरीकी सैलानी भरे हुए थे। गाहक बैठने की जगह की कमी के कारण बियर के मग लिये खड़े-खड़े गटक रहे थे। इस रेस्त्रां के भोजन की भी ख्याति है। इसलिये यहां निमन्त्रण पर दूसरी बार भी गये। विस्मय—भारतीय करी, कबाब के साथ करेला भी परोसा गया।

पोर लुई से निकल कर पच्चीस मिनट में वाकोआ पहुँच गये। वाकोआ में गरमी उमस की असुविधा कतई नहीं, फरफराती सुहावनी हवा। मौरिशस द्वीप का धरातल कछुए की पीठ के आकार का है। मध्य में और कुछ पश्चिम की ओर ऊंचाई से सब और समुद्र तट तक ढलानें। द्वीप के बीच के ऊंचे स्थानों में गरम मौसम में भी शीतलता और कभी कोहरा भी रहता है। समुद्र तटों पर अपेक्षाकृत गरमी और उमस परन्तु फरफराती समुद्री हवा के कारण गरमी और उमस से उतना कष्ट नहीं होता। बहुत से सम्पन्न लोग गरम ऋतु में समुद्र तट पर बनी कुटिया में रह जाते हैं।

सुबह द्वीप के उत्तर-पश्चिम राजधानी पोर लुई गये थे। संध्या चाय के उपरान्त घूमने के लिये वाकोआ से समीप दक्षिण-पश्चिम 'केरपिप' की बस्ती की ओर चले गये। संध्या आकाश में बादल घिरने लगे थे। वाकोआ बाज़ार से सेंट पाल सड़क से ब्रिटिश नौसैनिक छावनी के सामने समकोण सड़क पर मुड़े। पहाड़ी रास्ते से चक्कर काटते सात-आठ मिनट में चार मील तय कर केरपिप के बाज़ार में थे। कौए की उड़ान से तीन मील का अंतर परन्तु मौसम वाकोआ से भिन्न। झीनी-झीनी फुहार पड़ रही थी। हवा में कुछ ठिरन। यह स्थान वाकोआ की अपेक्षा

समुद्र तल से ऊंचा है।

केरपिप फ्रांसीसी शब्द है। अर्थ, पाइप या चिलम झाड़ने-ताज़ा करने की जगह। सत्तर-अस्सी बरस पूर्व मोटर सवारी का ऐसा विकास न हो पाया था, न अच्छी सड़कें बनती थीं। उस समय यहां ऐसी बस्ती भी न थी। फ्रांसीसी भूस्वामी घोड़ों पर पूर्व-पश्चिम या उत्तर-दक्षिण जाते समय इस ऊंचाई पर पहुँच कर घोड़ों को कुछ विश्राम देने के लिये यहां कुछ रुक जाते। रुकने पर अपना पाइप (चिलम) झाड़-साफ करके नया तम्बाकू भर कर दम भी लगा लेते थे इसलिये जगह का नाम केरपिप पड़ गया।

नन्दलाल को स्थानों के फ्रांसीसी और अंग्रेज़ी नामों के अनुवाद या पर्याय सोचने का शौक है। उन्हें केरपिप का पर्याय सुझाया—चिलम का पड़ाव या चिलम-चट्टी। बाद में हम द्वीप के दूसरे स्थानों के हिन्दी पर्याय भी बनाते रहे।

केरपिप द्वीप के स्वतन्त्र होने से पूर्व केवल यूरोपियनों की बस्ती थी। अब अनेक ऊंचे पद के सरकारी अफसर और सम्पन्न लोग भी यहां बस गये हैं। दुकानों और बाज़ार का रूप-रंग यूरोपियन। दुकानों में कांच की दीवारों के पीछे बिक्री के लिये योरुप की आधुनिकतम पोशाकों और दूसरी आकर्षक वस्तुओं का प्रदर्शन। बाद में भी चार-पांच बार कुछ खरीददारी या घूमने के लिए केरपिप जाते रहे। यहां प्रायः ही फुहार-कोहरा और ठंडक पायी। मसूरी-शिमला की बरसात जैसा मौसम।

१६ जनवरी दोपहर से पहले उत्तर की ओर पड़ोसी नगर 'कॉत्रबोन' 'रोज़ हिल' और बोबासें' देखने गये। ये छोटे नगर तीन-चार मील के अन्तर से हैं। भारत के बड़े नगरों की दृष्टि से एक ही नगर के मुहल्ले परन्तु इन सब नगरों की अपनी-अपनी नगर पालिकाएं और टाउन हाल हैं।

कॉत्रबोन की छोटी बस्ती बहुत सुथरी-सुन्दर है। वाकोआ से कुछ ऊपर है। रोज़हिल वाकोआ से कुछ नीचे। रोज़हिल का बाजार और बस्ती केरपिप, वाकोआ और बोबासें से बड़ी है। वाकोआ कॉत्रबोन में भारतीय अधिक और कुछ गोरे कैथोलिक हैं। रोज़हिल में अगोरे कैथोलिक लोग अधिक हैं। बाज़ार में दो-तीन क्लब भी हैं। कुछ रंगीला, मस्त-मौजी वातावरण। बोबासें की बस्ती मिली-जुली है।

व्यक्तियों या स्थानों के नामों का अनुवाद नहीं किया जाता परन्तु विनोद के लिये हम लोगों ने इन तीनों नगरों के समनार्थक या हिन्दी पर्याय सोच लिये। कॉत्रबोन—चौहद्दी, रोज़हिल—गुलाब टीला और बोबासें सोहन ताल।

उस संध्या हम लोगों के स्वागत और स्थानीय समाज से हमारा परिचय कराने के लिये योजना और विकास मन्त्री श्री खेर जगतसिंह ने बोबासें के सांस्कृतिक क्लब में काक्टेल पार्टी का आयोजन किया था। बोबासें के इस सांस्कृतिक क्लब में सभी स्थानीय समाजों-हिन्दू, मुस्लिम, तामिल, चीनी और कैथोलिक सभी का सहयोग है। क्लब का नाम है 'त्रिवेणी'। भारतीयों के संस्कारों और संस्कृति में अपनी परम्परा गहरी जमी हुई है।

संध्या त्रिवेणी में खूब बड़ा जमाव हुआ। सभी वर्गों के नर-नारी थे। प्रधान मन्त्री सर रामगुलाम और भारत के उच्चायुक्त महिम कृष्णदयाल शर्मा दोनों सपत्नीक आये। अनेक मन्त्री, अध्यापक, व्यापारी, सरकारी अफसर और मौरिशस में तकनीकी सहायता देने के लिये गये भारतीय, रामकृष्ण सेवा मिशन के स्वामी जी भी। एक ही स्थान पर अनेक व्यक्तियों से परिचय का सुयोग।

१७ जनवरी दोपहर से पूर्व भारतीय उच्चायुक्त कृष्णदयाल जी से भेंट के लिये पोर लुई गये। परिचय पिछली संध्या त्रिवेणी में हो चुका

था। सेंटपाल सड़क पर ब्रिटिश नौसैनिक छावनी के सामने से कई बार गुजरे थे। इस स्थान पर अब भी ब्रिटेन का यूनियन जैक लहराता है। इतने भाग में रोशनी भी लन्दन की सड़कों की तरह कोहरा-भेदी पीले रंग की है। सड़कों पर जगह-जगह 'नो एन्ट्री' (प्रवेश निषेध) भी लिखा है। नन्दलाल इस चेतावनी की परवाह नहीं करते।

अब मौरिशस भी भारत की तरह ब्रिटिश संयुक्त राष्ट्र मण्डल का पूर्ण स्वतन्त्र सदस्य है। अभी मौरिशस ने भारत की तरह स्वतन्त्र गणतन्त्र बन कर स्वयं को ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक नहीं किया है। अब तक द्वीप का गवर्नर जनरल ब्रिटिश सम्राट द्वारा मनोनीत, ब्रिटेन से भेजा जाता था। एक वर्ष पूर्व मौरिशस के ब्रिटिश गवर्नर जनरल की रोग से द्वीप में मृत्यु हो जाने पर प्रथम बार मौरिशसी प्रजा सर उस्मान द्वीप के गवर्नर जनरल नियुक्त हुए हैं।

मुझे कौतुहल था, ब्रिटेन को अब अपने किन साम्राज्य-मार्गों की रक्षा की चिन्ता है। मौरिशस में नौसेना छावनी रखने और 'मोका' पहाड़ी शृङ्खला पर अपनी निरीक्षण और संचार चौकी रखने की क्या जरूरत है? और मौरिशस को यह क्यों-कैसे स्वीकार है?

यहां मालूम हुआ, मौरिशस स्वतन्त्र राष्ट्र हो गया है। अब अन्य राष्ट्रों से सम्पर्क में पूर्णतः स्वाधीन है। परन्तु मौरिशस स्वतन्त्र गणतन्त्र नहीं बन गया। मौरिशस ने ब्रिटिश साम्राज्य से अपना सम्बन्ध समाप्त नहीं कर लिया है। ब्रिटेन इस द्वीप में अपनी चौकी को अन्तरिक्ष और वातावरण में अनुसन्धान की चौकी बताता है। इस चौकी से ब्रिटेन किसी हद तक महासागरों के मार्गों पर अपनी पुरानी सत्ता के चिह्न की रक्षा का भी सन्तोष पाता होगा। भारत की तरह मौरिशस भी सामरिक गुटों से पृथक रहना चाहता है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की वास्तविकता से भी आंख नहीं मूंद सकता। मौरिशस को अपनी रक्षा के लिये सचेत रहना जरूरी है। वह आधुनिक साधनों की संहारक शक्ति, अपने

अति सीमित क्षेत्र, अल्प साधनों और सामरिक सामर्थ्य में भी बेखबर नहीं है। सब राष्ट्रों की स्वतन्त्रता-समता की अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावपूर्ण घोषणाओं के बावजूद असलियत क्या है, यह इस द्वीप के राजनेता जानते हैं। कभी महासागरों में एक महा शक्ति का सातवां आक्रामक बेड़ा घूमने लगता है कभी दूसरी महाशक्ति का उससे अधिक संहारक बेड़ा। स्वयं किसी से संघर्ष न चाहने पर भी यह कल्पनातीत नहीं कि बड़े-बड़े सांड़ों की लड़ाई में छोटे-मोटे कुचल जायें। मौरिशस को ब्रिटेन की इस चौकी से सागरों में सामरिक गति-विधियों की जानकारी का भरोसा हो सकता है।

उस संध्या नन्दलाल हमें 'पितों द मिलिए' (केन्द्रीय शिखर) दिखाने ले गये। समुद्रतल से डेढ़ हजार फुट की ऊंचाई पर विस्तृत मैदान में चाय बागान का गहरा हरा विस्तार। बागान के बीच में सुथरी तारकोल पटी सड़कों के दोनों ओर फूलों की झाड़ियां। इस गहरे हरे प्राकृतिक आंगन के बीच एक बड़ी झील, नीले रेशम बिछी सेज की तरह। सेज के सिरहाने केन्द्रीय पहाड़ी का तकिया। इस पहाड़ी की चोटी लगभग द्वीप के बीचोंबीच है इसलिये (केन्द्र का) शिखर। इस मनोरम झील का उपयोग बिजली पैदा करने और इस आंचल की सिंचाई के लिये हो रहा है।

ब्रिटिश शासन के समय द्वीप में चाय का उपयोग नाम मात्र को था। अब सरकारी प्रोत्साहन से यह उद्योग पनप रहा है। यहां की चाय की सुवास और स्वाद अच्छे माने जाते हैं। चाय के कई कारखाने चालू हो गये हैं। सुना कि प्रधान मंत्री के सुझाव से योजना और विकास मंत्रालय चाय के दस-दस एकड़ के बाग तैयार करवा कर इस व्यवसाय के इच्छुक लोगों को सौंप देता है। प्रयोजन है, बेकारी दूर करने के साथ ही भूमि के सम वितरण का यत्न और द्वीप की आय वृद्धि।

चाय बागान में सहकारिता के लिये सभी सुविधायें दी जा रही हैं।

पहले से चली आ रही ईख और चाय की हजारों एकड़ की सम्पत्ति के वितरण के बजाय इस प्रयोग की सफलता का उदाहरण पेश करना उपयोगी हो सकता है। विस्तृत बागान की सिंचाई और बिजली उत्पादन के अतिरिक्त यह नीलम-सी झील और उसके सिरहाने बादली रंग के स्तम्भ जैसी चट्टानी चोटी सैलानियों या टूरिस्टों के लिये यह भी आकर्षण है।

१८ जनवरी ग्यारह बजे शिक्षा मंत्री श्री जुमादार से भेंट का समय था। पूर्व संध्या कुछ लोगों से द्वीप में भाषा के प्रसंग पर चर्चा हो चुकी थी।

बहुजाति द्वीप मौरिशस में अनेक संस्कृतियों और भाषाओं का भी मिश्रण है। पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी आधिपत्य के समय द्वीप में एशिया-अफ्रीका के विभिन्न भागों से दास लाये जाते थे। उन लोगों में परस्पर बोलचाल के लिये अपनी भाषा हो सकती थी। वे मालिकों की भाषा का ही प्रयोग करने के लिये बाध्य थे। फ्रांसीसियों के समय से द्वीप बसने लगा था। अंग्रेजों का आधिपत्य हो जाने पर शनैः-शनैः सरकारी भाषा अंग्रेज़ी होती गयी परन्तु समाज और व्यवसाय में फ्रांसीसी भाषा का ही प्रयोग जारी रहा। यह भाषा शुद्ध फ्रांसीसी न थी, बल्कि अनेक बोलियों के शब्द लिये अपभ्रंश फ्रांसीसी।

अंग्रेजी शासन में भारत से शर्तबंद मजदूर बड़ी संख्या में आने लगे। इन मजदूरों के दल एक समय एक प्रदेश से आते थे और उन्हें प्रायः दलों में काम दिया और बसाया जाता था। यह लोग आपस में अपनी बोली या भाषा का प्रयोग करते परन्तु अन्य द्वीपवासियों से सम्पर्क के लिये अपभ्रंश फ्रांसीसी बोलते थे। अपभ्रंश फ्रांसीसी 'क्रिओल' कहलाती है। भारत के एक प्रान्त से गये मजदूरों का सम्पर्क भारत के दूसरे प्रान्त के मजदूरों से होने पर भी क्रिओल का सहारा जरूरी होता। इस प्रक्रिया

से उत्तरोत्तर द्वीप के हाट-बाजारों, खेतों, कारखानों में सर्वसाधारण के प्रयोग की भाषा क्रिओल बनती गयी।

अब मौरिशस के शासन कार्य में पूर्णतः अंग्रेजी का प्रयोग होता है। अधिकांश समाचार पत्र अब भी पुरानी परम्परा से फ्रेंच में प्रकाशित होते हैं। हिन्दी में भी एक ढीला-ढाला साप्ताहिक और कुछ मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक हैं, विभिन्न नगरों की हिन्दी परिषदों से प्रकाशित हो रहे हैं। शिक्षित वर्ग में फ्रांसीसी अब भी संस्कृति का चिह्न मानी जाती है। सरकारी दफ्तरों में यदि अंग्रेजी से आये आदेश के सम्बन्ध में विमर्श-परामर्श करना हो तो बातचीत फ्रांसीसी में होने लगती है या क्रिओल में।

द्वीप के भिन्न वर्गों में भिन्न भाषाओं के लिये पक्षपात है। अगोरे कैथोलिक लोग क्रिओल भाषी होने पर भी अपनी मातृभाषा फ्रांसीसी बताना चाहते हैं, शायद अपने वंश में फ्रांसीसी रक्त की कुछ बूंदों के अवशेष के गर्व में। भारतीयों के वंशज अपनी पारस्परिक भाषाओं के प्रति अनुराग के अतिरिक्त सरकारी काम में अंग्रेजी के पक्षधर हैं। भाषाओं में इस रुचि भेद के बावजूद ऐसा मौरिशसी मिलना बहुत कठिन जो क्रिओल न बोल पाये। इस स्थिति का कारण है कि प्राइमरी स्कूलों में पहले केवल फ्रांसीसी और अंग्रेज़ी की ही शिक्षा दी जाती थी। उसके बाद हिन्दी को स्थान मिला। बाद में उर्दू, तमिल, तेलगू, मराठी के लिये मांग उठने पर जहां-तहां इन भाषाओं के लिये भी संख्या के अनुपात में व्यवस्था कर दी गयी है। स्कूलों में क्रिओल की शिक्षा नहीं दी जाती, द्वीपवासी उसे वातावरण से सीख लेते हैं। ऐसे भारतीय वंशज मिल जायेंगे जो कोई भारतीय भाषा शुद्ध नहीं बोल सकते परन्तु क्रिओल फर्राटे से बोलते हैं।

वास्तव में बोलचाल के लिये क्रिओल के अतिरिक्त, भारतीय शिक्षित वर्ग में भारतीय भाषाओं में से प्रयोग केवल हिन्दी का होता है। उत्तर

भारतीयों के परिवारों में क्रिओल मिली भोजपुरी भी चलती है। भारतीय कभी अंग्रेज़ी या फ्रेंच में बात-बहस करते उत्तेजना में भोजपुरी कहावतें या मुहाविरे भी बोल जाते हैं। बखोरी और नन्दलाल में बहस चल रही थी अंग्रेज़ी में। बखोरी बोल उठे—'हड़बड़ी को ब्याह कनपटिया में सिन्दूर।' दादा-दादी का प्रभाव शेष है। अब फिर हिन्दी के अनुराग में शुद्ध हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा है। अब मौरिशस में अनेक हिन्दी लेखक हैं जिनकी रचनायें चोटी के भारतीय पत्रों में स्थान पा रही हैं।

द्वीप में उत्तर प्रदेश और बिहार से गये भारतीयों ने अपनी भाषा को पूर्णतः कभी न छोड़ा। इसका एक बड़ा कारण रामायण, भागवत आदि के प्रति श्रद्धा थी। इस शताब्दी के आरम्भ से भारतीयों के वंशजों ने अपने जातीय अस्तित्व और अपनी सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा की चेतना की प्रबल लहर उठने लगी थी। इस जागृति का श्रेय अधिकांश में आर्यसमाजी प्रचार को रहा है। तब द्वीप में स्कूल कम थे। जो थे, उनमें केवल अंग्रेज़ी और फ्रेंच ही पढ़ाई जाती थी। हिन्दी भाषी भारतीयों ने अपनी भाषा की रक्षा के लिये नगरों और गांवों में भी निःशुल्क रात्रि पाठशालायें आरम्भ कर दी थीं। स्कूलों के बालक-बालिकाएं और कुछ प्रौढ़ भी दिन भर के श्रम के बाद हिन्दी पढ़ने के लिये चार-चार पांच-पांच मील चले आते। उसी प्रकार हिन्दी शिक्षक भी दूर-दूर से निःशुल्क पढ़ाने के लिये आते। पाठशालाओं में रोशनी और पुस्तकों के लिये आवश्यक व्यय चन्दे से एकत्र किया जाता।

उस समय, जैसे भारत में स्वतंत्रता के लिये संघर्ष काल में भारत के सभी प्रदेश हिन्दी को भारत की भाषा या अपनी राष्ट्र भाषा समझते थे, भारतीय मौरिशसी भी हिन्दी को ही भारत की भाषा मान रहे थे। मौरिशस में पहला भारतीय समाचार पत्र गांधी जी की प्रेरणा से द्वीप में आये डाक्टर मनीलाल मंगलदास ने १६११ में गुजराती में आरम्भ किया

था परन्तु शीघ्र ही उसकी भाषा बदल कर हिन्दी कर दी गयी और उसका नाम था—'हिन्दुस्तानी'। इसके बाद एक महाराष्ट्र सज्जन ने यहां भारतीय पत्र आरम्भ किया। वह पत्र भी हिन्दी में ही प्रकाशित किया गया। हिन्दी के प्रति लगन और उत्साह बढ़ने पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के लिये मौरिशस में प्रबन्ध किया गया। इस समय द्वीप में साहित्य सम्मेलन की सर्वोच्च परीक्षा उत्तीर्ण अनेक व्यक्ति हैं। भारतीय मौरिशसी जन के उसी हिन्दी प्रेम की परिणति में द्वीप में हिन्दी प्रचारिणी सभा बनी। इस समय वाराणसी या लखनऊ नगरों से कम जनसंख्या के इस द्वीप में अठारह हिन्दी परिषदें सक्रिय हैं।

शिक्षा मंत्री जुमादार ने शिक्षा के अन्य पहलुओं के साथ हिन्दी की स्थिति और उसे प्रोत्साहन देने के सम्बन्ध में भी चर्चा की। अब इस द्वीप के अधिकांश प्राइमरी स्कूलों में हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था है। प्राइमरी के बाद उच्च कक्षाओं में हिन्दी की व्यवस्था न थी तो हिन्दी के प्रति विद्यार्थियों का उत्साह क्षीण हो जाता था या उनका हिन्दी ज्ञान अपक्व रह जाता था। अब जनवरी १९७३ से शिक्षा मंत्रालय ने उच्च कक्षाओं में भी हिन्दी शिक्षा के लिये आदेश दे दिया है।

शिक्षा मंत्री के स्वर में खिन्नता की खनक आ गई। हिन्दी शिक्षा की योग्यता के लिये शिक्षा मंत्रालय ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद की परीक्षाओं को मान्यता दी है परन्तु हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उच्चतम परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रमाण पत्र पाये अनेक लोग हमारे स्थानीय परीक्षा में अयोग्य साबित हो जाते हैं। हम विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाने के लिये उन पर कैसे निर्भर करें और उनके हिन्दी पाण्डित्य के दावे की उपेक्षा भी कैसे करें?

शिक्षा मंत्री ने बताया—मौरिशस से भारत भ्रमण के लिये गये दो-तीन व्यक्तियों ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों से अपनी इस कठिनाई की चर्चा की। सम्मेलन के अधिकारियों ने स्वीकार किया—

भारत से हजारों मील दूर लगन से हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्ययन करने वालों का उत्साह भंग करना अन्याय होगा। हमारे विचार में कठिनाइयों के विचार से सम्मेलन के परीक्षकों का उनके प्रति सहृदय होना उचित ही है।

शिक्षा मंत्री बोले—द्वीप पर सम्मेलन की इस कृपा का अर्थ, हम लोगों पर हिन्दी भाषा और साहित्य का निम्न स्तर जकड़ देना है। यह अच्छी हिन्दी सीखने की हमारी इच्छा को कुचल देना नहीं तो क्या है? सब जानते हैं, इस समय मौरिशस के अनेक लेखकों की रचनायें भारत के प्रमुख हिन्दी पत्रों में स्थान पा रही हैं। सम्मेलन के अधिकारी अब भी उन्हें पुचकार कर हिन्दी सिखाने की उदारता का संतोष चाहते हैं।

१६ जनवरी को काबडी पर्व के उपलक्ष में सब स्कूलों, सरकारी दफ़तरों, बैंकों और हाट-बाज़ार में छुट्टी। किसी भी सम्प्रदाय का पर्व त्यो-हार हो, मौरिशस में पूरा द्वीप छुट्टी-उत्सव मना लेता है। काबडी तमिल समाज का देवी की पूजा का पर्व है। परी तालाब के प्रसंग में शिवरात्रि की बात कह चुका हूँ। काबडी पूजा में विश्वास और भक्ति के उदाहरण से दर्शकों के शरीर कंटकित हो जाते हैं। भक्त देवी की प्रतिमा की चौकियां अपने सिरों पर उठाये अनेक जुलूसों में, द्वीप के विभिन्न भागों से पोर लुई की ओर जाते हैं। इन प्रतिमाओं की शोभा के लिये मोरपंख की तरह सजे फूलों जड़ी हरियावल के विराट पंखों के आकार के छत्रों का बोझ भी रहता है। देवी की कुछ बड़ी प्रतिमाएं ट्रकों पर सजायी गयी वेदियों पर जुलूसों के आगे चलती हैं। देवी की चौकियों के साथ भक्तों की मंडलियों का ढोलक-मजीरे से कीर्तन।

प्रतिमाओं के जुलूसों का ढंग बहुत कुछ भारत के नगरों में रामलीला की झांकियों जैसे होता है परन्तु इस पूजा की प्रक्रिया के लिये बहुत दृढ़ता, सहिष्णुता दरकार। पूजा के लिये मनौती या प्रतिज्ञा करने वाले

स्त्री-पुरुष भक्त पूजा के समय शुद्धि के प्रयोजन से एक दिन पूर्व से उपवास रखते हैं। पूजा के दिन प्रातः नदी या सरोवर स्नान किया जाता है। भक्तों के चेहरे और शरीर पर मंत्र पाठ से चन्दन और सिन्दूर का लेप करके चांदी की एक-एक फुट लम्बी महीन तीखी सलाखें भक्तों के गालों के आर-पार भोंक दी जाती हैं। उनके सीने, पीठ और कन्धों पर भी चांदी की कीलें चुभा कर खड़ी रहने दी जाती हैं। जनश्रुति है कि इस प्रकार चांदी की सलाखें और कीलें भक्तों के शरीरों में बेधने पर खून नहीं बहता। इतना ही नहीं कुछ भक्त पूजा यात्रा में सिर पर देवी की चौकी लिये चलते समय काठ के ऐसे खड़ाऊं पर चलते हैं, जिनपर कीलें गड़ी रहती हैं। देख कर विचार आ रहा था, भक्तों की ऐसी हालत देख कर कृपालु देवी कितनी व्याकुल होती होगी ? भक्त समझते हैं, यह देवी को प्रसन्न करने के उपाय हैं।

द्वीप के सब भागों से उठने वाली पूजा यात्राएं पोर लुई स्थित देवी मन्दिर में एक साथ प्रवेश के लिये पोर लुई के टाउनहाल के सामने के चौक से एक जुलूस में सम्मिलित हो जाती हैं। हम लोग पूजा यात्रा का समारोह देखने के लिये वाकोआ से पोर लुई जा रहे थे। कॉत्रबोन से कुछ आगे सड़क के दाहिने हाथ एक नदी की पतली धारा है। उस धारा के किनारे भी भक्तों को स्नान कराकर उनके शरीर पर चन्दन-सिन्दूर पोत कर शरीरों में सलाखें और सुइयां छेदने की पावन क्रिया की जा रही थी। भक्तों के चारों ओर कौतूहल से एकत्र तमाशबीन भीड़ जमा थी। धारा सड़क से कुछ दूर थी और धूप की तीखी चकाचौंध। उस भीड़ में शामिल होने का उत्साह न था। दूर से निश्चय न हो सका कि शरीर बेंधते समय रक्त निकल रहा था या नहीं। परन्तु भक्त पीड़ा से छटपटा जरूर रहे होंगे क्योंकि इस क्रिया के समय दूसरे लोग भक्तों को निश्चल रखने के लिये उनके हाथ-गोड़ पकड़े हुए थे।

हम लोग पूजा यात्रा समीप से सुविधा-पूर्वक देख सकें इसके लिए

पोर लुई के नगर अधिकारी बखोरी ने टाउनहाल में दूसरी मंज़िल पर चौक की ओर बरामदे में प्रबन्ध करवा दिया था। बिंधे शरीर फूलों और हरियावल से सजी भारी चौकियां सिर पर उठाये भक्त थकान और पीड़ा से डगमगाते चल रहे थे। भक्तों के हितू-सम्बन्धी उन्हें सहारा देने के लिये साथ थे। कुछ लोग जल और पंखे साथ लिये चल रहे थे। भक्तों के डगमगा जाने पर उन्हें थाम कर उन पर छिड़क कर पंखों से हवा कर रहे थे। पूजा यात्रा देखने के लिये जुटी भारी भीड़ में, विशेष कर समीप बाज़ारों में दूसरी मंज़िल पर रेस्त्रां की खिड़कियों से देखने वालों में बहुत से अमरीकी और यूरोपियन थे।

बखोरी ने उन लोगों की ओर संकेत से कहा—इस दृश्य से हमें विरक्ति अनुभव होती है, इन यूरोपियनों को कौतूहल। शायद इन लोगों के लिये ऐसे दृश्य कल्पनातीत हो सकते हैं। हम भारतीयों के लिये नहीं। भारत यात्रा में अनेक साधुओं को भिक्षा के लिये कीलों की सेज पर तप करते देखा जा सकता है। मुहर्रम के पर्व पर इससे क्या कम होता है? उन्होंने बताया, अब तो लखनऊ की तरह द्वीप में मुहर्रम के अवसर पर श्रद्धालु शिया लोग मातम के लिये दहकते अंगारों पर चलने की रस्म करते हैं। ऐसे प्रदर्शनों का प्रयोजन दूसरे लोगों को अपने सम्प्रदाय के विश्वास का बल दिखाना। कौन कहे, किस सम्प्रदाय के अन्ध-विश्वासों में अधिक बल है?

पूजा यात्रा की सबसे बड़ी झांकी जिस ट्रक पर थी उसके माथे पर बड़े-बड़े रोमन अक्षरों में लिखा था—हिन्दू जन महासंघम्।

उस ट्रक की ओर नन्दलाल और बखोरी का ध्यान दिलाया। बात-चीत के प्रसंग में कई लोगों से सुना था, भारत के विभाजन के प्रभाव से द्वीप के मुसलमान स्वयं को भारतीय स्वीकार नहीं करना चाहते। भारत के दक्षिण में, द्रविड़ मुनेत्र कज़गम, आन्दोलन का प्रभाव भी मौरिशस में पहुँच गया है। अनेक तमिल लोग अपना समाज हिन्दुओं या भारतीयों से

भिन्न माने जाने का तकाज़ा करने लगे हैं। और इस नाते अल्पमत के विशेषाधिकारों की मांग। भारत में जो भी प्रवृत्ति चले, उसका प्रभाव उस द्वीप पर ज़रूर पड़ता है।

बखोरी ने कहा—साम्प्रदायिक या धर्म विश्वास अपनी जगह, पृथक वर्ग के अधिकारों की मांग अपनी जगह। धर्म और सम्प्रदाय मनुष्य के लिये हैं। उनका प्रयोग अनेक प्रयोजनों से किया जाता है।

मौरिशस में सभी मुस्लिम या तमिल अपनी पृथकता के समर्थक नहीं हैं। लोकायत। (सैक्यूलर) विचारों के दूरदर्शी लोग द्वीप की सम्पूर्ण प्रजा को, भारतीय वंशजों और कलर्ड लोगों को एक राष्ट्र या नेशन मानते हैं। इस समय मौरिशस के गवर्नर जनरल सर उस्मान मौरिशस की सम्पूर्ण प्रजा की एक राष्ट्रीयता के समर्थक हैं। ईसी प्रकार बोबासें की त्रिवेणी क्लब के प्रधान भी एक सफल व्यवसायी तमिल सज्जन श्री पदायाची हैं।

मौरिशस में केवल भारतीय वंशजों ने ही अपनी भाषा और सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा के लिये निष्ठा, साहस और प्रतिभा का परिचय दिया हो सो बात नहीं। मौरिशस में जन्मे कुछ फ्रांसीसी कवियों, लेखकों राबर्ट एडवर्ड हार्ट, मालकम द शाज़ाल और कामी द ग्राब्रियल की फ्रांसीसी साहित्य को देन महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि और वर्ग बहुत समय तक अवसरहीनता से दबा रहा परन्तु इस वर्ग ने भी अनेक प्रतिभाओं को जन्म दिया है। मौरिशस को अपने अगोरे कवि और लेखकों मोर्सलद, काबों, आन्द्रे लुगालां, और रेजिस फौशेत के लिए गर्व है। 'भारतीय विद्या भवन,' बम्बई के प्रकाशनों से मौरिशस के विद्वान लेखक वासुदेव विष्णुदयाल के नाम भारतीयों के लिये अपरिचित नहीं हैं। वहां जाने पर द्वीप में शिक्षा प्रसार, राजनैतिक जागृति, हिन्दी और भारतीय संस्कृति की शिक्षा के लिये उनके विषद कार्यों के सम्बन्ध में सुनकर भेंट के लिये गये।

वासुदेव विष्णुदयाल जी की अनेक पुस्तकें भारतीय इतिहास और वैदिक श्रुति-स्मृतियों के सम्बन्ध में अंग्रेजी और फ्रेंच में प्रकाशित हैं। वासुदेव प्रौढ़ अवस्था प्राप्त हैं। व्यक्तित्व गम्भीर, मितभाषी परन्तु व्यवहार उन्मुक्त आत्मीयता का।

अनुमान था वासुदेव जी की रुचि इतिहास और दर्शन में है, उपन्यास, कथा कहानी के लिये उन्हें क्या समय होगा। बातचीत में एक व्यक्ति का प्रसंग आने पर विष्णुदयाल मुस्कराये "......वह आदमी आपके देशद्रोही (उपन्यास) का बद्री बाबू है।"

विस्मय हुआ, यह व्यक्ति उपन्यास भी पढ़ता है और इतने मनोयोग से कि पात्र भी याद हैं। चर्चा में पता लगा वासुदेव, मौरिशस के सम्बन्ध में सबसे पहली पुस्तक बनार्ड द सेंट पियरे के फ्रांसीसी उपन्यास पाल और वर्जिनी का भी अनुवाद हिन्दी में कर चुके हैं। इस उपन्यास का विशेष महत्त्व इसलिये भी है कि साहित्य जगत या सामान्य पाठकों को मौरिशस का प्रथम परिचय इसी उपन्यास ने दिया था। इस उपन्यास से प्राप्त प्रेरणा से पाल और वर्जिनी, काल्पनिक प्रेमियों की मूर्तियां पोर लुई और केरपिप के टाउनहाल में स्थापित हैं। जयनारायण राय ने भी द्वीप में हिन्दी और शिक्षा प्रसार के लिए बहुत काम किया है। उनकी पुस्तक 'मौरिशस इन ट्रांज़िशन' बहुत उपयोगी और रोचक भी है।

वाकोआ परिषद

२३ जनवरी संध्या द्वीप की हिन्दी परिषदों की ओर से वाकोआ टाउनहाल में संयुक्त कार्यक्रम था। इस कार्यक्रम की सूचना मौरिशस रेडियो द्वारा प्रसारित हो चुकी थी। वाकोआ की छोटी बस्ती के विचार से टाउनहाल विशाल और भव्य है। चारों ओर बाग-बगीचा भी सुन्दर-सुथरा। इस सभा का सभापतित्व प्रधान मंत्री ने निबाहना स्वीकार किया

था। प्रधान मन्त्री, आयु तिहत्तर वर्ष हो जाने पर भी शासन कार्य के अतिरिक्त सार्वजनिक कार्यकलाप में पर्याप्त भाग लेते हैं। दोपहर से पूर्व ही सूचना मिल गयी, प्रधान मन्त्री गत संध्या से कुछ अस्वस्थ हैं, सभा में न आ सकेंगे।

सभा का आयोजन बड़े हाल में था। वेदी के सामने श्रोताओं के लिये कुर्सियों की व्यवस्था है। इस देश में हिन्दी या साहित्य विषयक आयोजनों में श्रोताओं की कल्पना प्रायः धोती-कुर्ता के वेश में होती है। यहां ढाई तीन-सौ श्रोताओं में धोती पहने पुरुष केवल दो थे, एक द्वीप की आर्य सभा के प्रधान और दूसरे रामकृष्ण सेवा मिशन के स्वामी जी। महिलाएं साड़ी में, भारतीय रिवाज से हाल के आधे में एक ओर।

पुरुषों के वेश में पश्चिमी प्रभाव के अतिरिक्त वातावरण भारतीय, धूप-अगर-लोबान की सुगन्ध, बंदनवार-फूलमालायें। सभापति के आसन पर शिक्षा मन्त्री जुमादार थे। उनके साथ ही द्वीप की हिन्दी परिषदों की संयुक्त समिति के अध्यक्ष सोमदत्त बखोरी थे। कार्यक्रम के आरम्भ में बखोरी ने द्वीप में हिन्दी परिषदों के कार्य और उपलब्धि का संक्षिप्त परिचय दिया :—

द्वीप की जनसख्या लगभग आठ लाख, लखनऊ नगर से कम है। द्वीप के विभिन्न भागों में अठारह हिन्दी परिषदें सक्रिय हैं। सभी परिषदों के सहयोग से संयुक्त निबंध प्रतियोगिताएं की जाती हैं। सर्वोच्च तीन निबंधों के लिये पुरस्कार दिये जाते हैं। इन निबंधों के प्रकाशन का भी प्रबंध किया जाता है। सभी परिषदें अपने-अपने क्षेत्रों में साहित्यिक आयोजन करती रहती हैं।

बखोरी ने संतोष प्रकट किया—हम अपना श्रम सार्थक मान सकते हैं। गत चार-पांच वर्ष में हमारी सक्रियता ने द्वीप में साठ के लगभग नवयुवकों को हिन्दी भाषा में प्रकाशन योग्य रचनाएं कर सकने के लिये उत्साहित किया है। बखोरी ने अपने तथ्यात्मक भाषण के अन्त में कहा—

हम प्रवासी भारतीय अपनी भाषा और संस्कृति की रक्षा और विकास के लिये सामर्थ्य भर यत्न कर रहे हैं। हमें गर्व है कि इस द्वीप को बसाने और इसके विकास में श्रम और संख्या के अनुपात से सबसे अधिक योगदान भारतीयों के वंशजों का है। हमारी तीन पीढ़ियों की अस्थियां इस द्वीप की भूमि में समाहित हैं। हमारी तीन-पीढ़ियों ने इस द्वीप को अपने खून-पसीने से सींच कर बसाया और इसका विकास किया है। हम मौरिशसी हैं। मौरिशस हमारी मातृभूमि है परन्तु यह भी तथ्य है कि संस्कृति और भाषा की दृष्टि से भारत हमारी मातामही भूमि या ग्रांडफादर लैण्ड है। अपनी संस्कृति और साहित्यिक सामर्थ्य के विकास में प्रेरणा और सहायता के लिये हम प्रवासी अपने आदि स्रोत पुरखा भारत की ओर देखते हैं। भारतीय विचारकों, लेखकों, कलाकारों से सृजन प्रेरणा में उत्साह और पथ-प्रदर्शन की आशा करते हैं। जय मौरिशस ! जय भारत !"

बखोरी के बाद डाक्टर नन्दलाल ने श्रोताओं को मेरे वैयक्तिक और मेरे कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दिया। परिचय नन्दलाल ने स्वयं भी कहा, केवल औपचारिक था, आवश्यक नहीं। सप्ताह भर में कितने ही लोगों से भेंट में स्पष्ट हो चुका था कि भारतीय-हिन्दी लेखक और उनकी रचनायें इस द्वीप के लिये अपरिचित नहीं हैं। सोच रहा था, भारत से तीन-हजार मील दूर इस द्वीप में इन वक्ताओं का हिन्दी उच्चारण और मुहाविरे का प्रयोग हमारे देश से कुछ भी भिन्न नहीं। आज जैसे अंग्रेजी के प्रयोग के लिये संसार-व्यापी क्षेत्र है, हिन्दी का क्षेत्र भी उत्तरोत्तर बढ़ सकता है, यदि हमारा साहित्य इस योग्य हो सके।

इस आयोजन में पहला कार्यक्रम परिषदों की गत निबंध प्रतियोगिता के सर्वोत्तम निबंधों के लिये पुरस्कार दिया जाना था। यह काम प्रकाशवती को निबाहना था। मैं उस समय बखोरी द्वारा मौरिशस के भारतीय वंशजों के लिये प्रवासी शब्द के प्रयोग के विषय में सोच रहा था। पिछले दिन

मौरिशस-टेलीविज़न पर भेंट-वार्ता के समय भी यह बात आ गयी थी—द्वीप के प्रवासी भारतीयों के लिये आप क्या प्रेरणा या सन्देश देंगे ?

अपने देश-राष्ट्र और स्वयं अपने प्रति सद्भावना और आदर के लिये धन्यवाद देते समय गत दिन टेलीविज़न पर कही बात दोहराये बिना न रह सका :—इस द्वीप के भारतीय वंशजों का इस द्वीप के विकास के लिये गर्व पूर्णतः सत्य और उचित है। यह देश निश्चय आपकी मातृभूमि है। आप राष्ट्रीय गर्व से जय मौरिशस कहते हैं। आप स्वप्न में भी इस देश को छोड़ जाने की बात नहीं सोचते। ऐसी अवस्था में आप स्वयं को प्रवासी कैसे कह सकते हैं ? मेरे विचार से प्रवासी शब्द में परम्परा से दीन भावना और दया-याचना की ध्वनि है। जिस समय आप यहां विदेशी शासन और शोषण के शिकार थे, यह शब्द आप के लिये प्रयोग किया जाता था। आज आप इस देश की जनता के नाते इस देश के निर्विवाद स्वामी हैं। आप मौरिशस के प्रवासी नहीं, मालिक और भाग्य विधाता हैं। द्वीप में बहुसंख्यक होने से इस देश की रक्षा और विकास का उत्तरदायित्व भी आपके कंधों पर है। प्रवासी शब्द से प्रकट दीन भावना आपके लिये असंगत है।

सांस्कृतिक या किसी भी प्रकार के सहायता-सहयोग के लिये भारत से आशा आपका उचित दावा और अधिकार है। परन्तु इस राष्ट्र से भारत का सम्बन्ध, इस राष्ट्र पर अपना कोई दावा या आधिपत्य मानने के रूप में नहीं है। भारत आपको सभी प्रकार की सहायता दे कर कर्तव्य-पूर्ति का संतोष अनुभव करेगा परन्तु मानवता और भाईचारे के नाते। भारत का प्रयोजन कोई प्रतिद्वन्द्विता, कोई गुट्टबाजी या भूमि पर प्रभाव द्वारा अपना आधिपत्य जमाना नहीं है। भारत और मौरिशस की बहुसंख्यक जनता एक संस्कृति और इतिहास की विरासत के नाते और परस्पर आदर-स्नेह की भावना से भाई-भाई है परन्तु राष्ट्रों की पूर्ण सार्वभौम स्वतन्त्र सत्ता है। इतने कम समय में आपकी साहित्यिक उपलब्धियों को

देखकर हमें आशा होती है कि हिन्दी साहित्य की समृद्धि और मानवी संस्कृति के विकास में स्वतन्त्र मौरिशस राष्ट्र का योगदान उत्तरोत्तर महत्त्वपूर्ण होगा। जय मौरिशस !"

सभा की समाप्ति पर चार-पांच सज्जनों ने हाथ मिलाते समय कहा, "आज से अपने लिये प्रवासी शब्द का प्रयोग समाप्त !"

टाउनहाल में सभा के बाद घर लौटे तो नन्दलाल की कार के पीछे एक और कार बंगले के फाटक के भीतर आ गयी। सभा से दो युवक और दो युवतियां पृथक बातचीत के अवसर के लिये पीछे-पीछे चले आये थे। वे लोग नन्दलाल परिवार के परिचित थे। गणेश टेकलाल ने कुछ ब्यौरे से बातचीत के लिये अगले दिन समय ले लिया। दस-पन्द्रह मिनट इधर-उधर की चर्चा के बाद युवती अध्यापिका झिझक से बोलीं—"कुछ पूछना चाहती हूं ?"

"जरूर"

"सुना है आप लिखते समय सब कुछ भूल जाते हैं। एक दिन आप लिख रहे थे, आपका चार-पांच बरस का बेटा कमरे में आ गया। आप को मालूम न हो सका। आप कलम में स्याही चुक जाने के कारण मेज़ पर खुला ही कलम रखकर दूसरे कलम से लिखने लगे।

"लड़के के खांसने से आप का ध्यान उसकी ओर गया। वह बहुत कष्ट में था। आपके अनजाने लड़के ने कलम का निब खींच कर मुंह में डाल लिया था और निब उसके गले में फंस गया था। आपने तुरंत फोन पर डाक्टर को स्थिति बता कर बुलाया।

डाक्टर ने पूछा—"मैं आ रहा हूँ लेकिन आप तब तक क्या कर रहे हैं ? यानि बच्चे की सहायता के लिये क्या उपाय कर रहे हैं ?

"सुनते हैं आपने डाक्टर को उत्तर दिया—मैं दूसरे कलम से लिख रहा हूँ। युवती ने पूछा, क्या यह सत्य घटना है।"

हंसी आ गयी। उत्तर दिया—"सम्भवतः यह कहानी लेखन में मेरी

लगन या लिखते समय मेरी एकाग्रता की सराहना के लिये गढ़ी गयी है। आप कभी विश्वास न कीजिये कि मैं भाव या संवेदना शून्य लिखने की मशीन-मात्र हूँ। जो व्यक्ति अपने बेटे के भयंकर कष्ट से बेपरवाह रहे उसे मैं भला आदमी ही नहीं मानूंगा, अच्छा लेखन तो क्या ?

सोचता रहा, विरोध या आदर में कल्पना कितनी बेलगाम हो सकती है ! और श्रेष्ठता, प्रशंसा का विश्वास हो तो किसी के गलत या भोंड़ेपन में बड़प्पन की सरलता दिखायी दे सकती है।

अगले दिन दोपहर बाद द्वीप के त्रिओले ज़िला के 'उत्तर युवक संघ' की ओर से निमंत्रण था। त्रिओले नगर या कस्बा वाकोआ से गहरे हरे टीलों पर से चढ़ती-उतरती, ईख के खेतों और छोटी बस्तियों को लांघती चक्करदार सड़क से पच्चीस-छब्बीस मील पर है। दोपहर ढलने पर चल दिये। उस ओर उत्तर-पूर्व का सागर तट देख सकने का भी विचार था। यों तो मौरिशस में सभी ओर सागर तट हैं परन्तु सभी सागर तट एक से नहीं होते।

सर शिवसागर रामगुलाम हस्पताल त्रिओले में है। यह हस्पताल द्वीप में स्वायत्त शासन के बाद प्रधान मंत्री के विशेष प्रयत्न से, उनकी योजना और निर्देशन में बना है। हस्पताल का नाम उन्हीं के नाम पर है। अब यह द्वीप में सबसे बड़ा हस्पताल है और विकसित देशों के स्तर के अनुकूल बनाया गया है। यहां अनेक भारतीय डाक्टर काम कर रहे हैं। द्वीप में पहले भी अच्छे हस्पताल थे परन्तु वे हस्पताल सम्पन्न और विशिष्ट वर्ग की बस्तियों में थे, सामान्य साधन प्रजा की बस्तियों से दूर। इस लम्बी राह में कई गांवों में फुटबाल के मैदान देखे। यहां ग्रामों में भी फुटबाल का शौक हैं। लोग अवकाश के दिन या समय मिलते फुट-बाल खेल लेते हैं। ग्रामों में फुटबाल प्रतियोगिताएं भी होती रहती हैं। फुटबाल के अतिरिक्त दूसरे खेलों की स्थानीय और अन्तरराष्ट्रीय प्रति-योगिताएं भी होती रहती हैं। कॉत्रबोन, रोज़हिल, बोबासें, पोर लुई सभी

छोटे नगरों या कस्बों में क्रीड़ांगन (स्टेडियम) हैं। केरपिप का क्रीड़ांगन सबसे बड़ा और भव्य है। अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिताएं प्रायः यहां ही होती हैं। भारतीय खिलाड़ी दल भी इन प्रतियोगिताओं में भाग लेने जाते हैं। यहां की घुड़दौड़ की भी अन्तरराष्ट्रीय ख्याति है। पोर लुई में घुड़दौड़ का मैदान 'शां मार्स' कहलाता है।

हमारे उत्तर प्रदेश की जनसंख्या आठ करोड़ से ऊपर है। मौरिशस की जनसंख्या करीब आठ लाख परन्तु हमारे पूरे राज में क्रीड़ांगन मौरिशस से कम ही होंगे। मौरिशस के क्लर्ड या कैथोलिक लोग बहुत मनोरंजन और उत्सव प्रिय हैं। कहीं घास के मैदान, नदी या सागर तट पर पन्द्रह-बीस क्लर्ड लोग जुड़ जायें तो उनके 'सेगा' नाच-गाने की उछल-कूद शुरू हो जायेगी। समीप बिअर-शराब की दूकान हो तो यह क्रम पहरों चल सकता है। इन लोगों की मनोरंजन-प्रियता का थोड़ा-बहुत प्रभाव पूरे द्वीप पर है। अवकाश के दिनों में सिनेमा घरों में एक टिकट में चार-पांच शो का रिवाज़ है। तमाशाई संध्या नौ बजे सिनेमा देखने जाकर प्रातः पांच-छः बजे लौट सकते हैं।

ग्रामीण बस्तियों से गुजरते समय देखता जा रहा था, लोग बाग सड़क किनारे खेलते बच्चे, कुछ के पांव में जूते न होने पर भी मैले चिथड़ों में न थे।

त्रिओले के बाज़ार में ही सिनेमा घर है। बाज़ार-बस्ती छोटी परन्तु सिनेमा घर अच्छा बड़ा नाम है 'आनन्द'। कई युवक बन्दनवारों और अनेक प्रकार के ताड़ों के बड़े-बड़े पत्तों से हाल के द्वार पर सजावट में व्यस्त थे। कार्यक्रम के समय में अभी आधे घण्टे से कुछ अधिक समय था। हाल के सामने से चुपचाप निकल गये, सागर तट की ओर जाने के लिये।

इस सागर तट का नाम है 'त्रू ओ बीश', हिरनी की गुफा। मौसम में इस ओर हिरन का शिकार मिल सकता है। तट दूर तक और रेतीला

है, मोटी-उजली रेत । ऐसी रेत कपड़े मैले नहीं करती । तट पर सुथरा होटल । बड़े-बड़े नगरों की गगनचुम्बी, सपाट सीधी इमारतों से ऊबे लोगों के लिये आकर्षक । पूरा होटल अनेक आकार की बंगलियों या झोपड़ों में फैला हुआ है । झोपड़ों में रहने वालों को महल-माड़ी देखने का कौतूहल, हवेलियों से ऊबे लोगों को दो-चार दिन रह सकने का चाव ।

झोपड़ों की छतें अनेक आकारों के मन्दिरों या गिरजों की चोटियों, मस्जिद-मन्दिर के गोलार्ध गुम्बदों की तरह या रीढ़ से दोनों ओर ढलती हुई । छतें फूस या ताड़-पत्तों की । खूब गठी हुई, सुथरी, आंधी-पानी में मजबूत । कमरे या कुटिया गोल, गोलार्ध, त्रिकोण, वर्ग और आयताकार होटल के रेस्त्रां या जलपान घर में समुद्र तट की ओर मोटे कांच की प्लेट की दीवार । धूप या आंधी-पानी में भीतर बैठने पर सागर की तरंगों का दृश्य । उत्तर-पश्चिम से तीखी धूप रोकने के लिये मोटे पर्दे खींचे जा सकते हैं । फर्नीचर बहुत आधुनिक ।

तट पर सैलानियों के लिये छोटी-बड़ी नौकाएं मोटर-बोट किराये पर मिल सकते हैं । यह तट तैरने के लिये अच्छा है । बच्चों या अनाड़ियों के लिये तट पर सागर जल का बड़ा कुण्ड बना दिया गया है । जलपान कक्ष में सब सुविधा ।

यहां बैठ सकने के लिये पहले कोक फिर काफी मंगा ली । स्थान की रमणीकता के कारण तुरन्त लौट चलने को मन न था परन्तु त्रिओले में कार्यक्रम के समय की मजबूरी ।

त्रिओले की ओर लौटते समय कुछ दूर से ही लाउडस्पीकर पर गीतों-गजलों के स्वर । भारत के स्वातंत्र्य संघर्ष की याद दिलाने वाले तराने । साथ ही आधुनिक हिन्दी फिल्मों का संगीत ।

आनन्द सिनेमा के सामने बाजार में भीड़ का जमघट । हाल श्रोताओं से भरा हुआ, स्कूली बालक-बालिकाएं, युवक, प्रौढ़ सभी आयु के लोग ।

सुदूर भारत से आये लोगों से मिलने, उनकी बात सुनने का अवसर यहां बहुत बड़ा आकर्षण। इन लोगों के लिये भारत की झलक का सुलभ माध्यम हिन्दी फिल्में। द्वीप में फिल्में ७० प्रतिशत भारतीय ही चलती हैं। शायद उनकी कल्पना में सभी भारतवासी हिन्दी फिल्मों के नायकों के अनुरूप होंगे।

द्वीपवासी सभास्थल की सजावट, अतिथियों को फूलमालायें और गुलदस्ते भेंट करने में अति उदार हैं। इतनी फूलमालायें कि यदि सभी मालायें एक साथ पहनाने का आग्रह हो तो अतिथि की गर्दन झुककर, मालायें नाक के सामने आ जाने से श्वास अवरोध की आशंका। हमें झेंप लग रही थी, त्रू ओ बीश के मोह में समय से पच्चीस मिनट पिछड़ गये थे।

सभा अध्यक्ष डाक्टर रामप्रकाश थे। इतनी बड़ी भीड़ के लिये विस्मय था। हमारे विलम्ब से भीड़ को असुविधा के लिये संकोच से खेद प्रकट किया। सभी के चेहरों पर पसीना झलक रहा था। सिनेमा हाल बड़ा है परन्तु पंखे नहीं हैं। द्वीप में पंखों का रिवाज़ कम है, जरूरत भी कम ही महसूस होती है।

रामप्रकाश वाग्मी ओजस्वी वक्ता हैं। उन्होंने श्रोताओं की प्रतीक्षा के पुरस्कार में, उन्हें उत्साहित करने के लिये मेरा और प्रकाश जी का परिचय सशस्त्र क्रांति के प्रयत्न के प्रमुख नेता और अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखक के रूप में अत्युक्ति और विस्तार से दिया। उनका भाषण व्यंजना पूर्ण था, कुछ श्लेष भी :

"मौरिशस में जब गरमी अधिक होती है तो तूफान आ जाता है। उस तूफान से वर्षा, जो भूमि को फूलों-फलों के वरदान से सन्तोष शांति देती है। उसी प्रकार हमारे द्वीपवासी भारत या अन्य देशों से महापुरुषों, लेखकों और कलाकारों के आने का समाचार पाकर उत्सुकता की गरमी से तपने लगते हैं। तब कलाकार तूफान की भांति सन्तोष की वर्षा लेकर

आता है। आज हम बहुत बड़े साहित्यिक तूफान यशपाल की प्रतीक्षा की तपिश से व्याकुल हैं। हमें विश्वास है, हमारी उत्कट प्रतीक्षा की गरमी से आज का विराट तूफान अपनी महत्ता के अनुकूल वर्षा देगा। उस वर्षा से मौरिशस के युवकों, साहित्यिकों और जनता की भावनाओं की खेती लहलहा उठेगी।"

हाल में भीड़ के कारण गरमी थी। पसीना हमें भी आ रहा था। रामप्रकाश बहुत समय इतने उत्साह और ओज से बोले कि उनके कोट की पीठ, बगलों और पतलून के घुटनों पर पसीना फूट आया। कुछ युवकों ने स्वरचित कविताएं सुनायीं। अन्य सज्जनों ने भी अपनी भावनायें प्रकट कीं। युवक संघ की ओर से एक अभिनन्दन पत्र दिया गया।

अपने प्रति कार्यक्रम के आयोजकों की सद्भावना और आदर के लिये आभार प्रकट किया :

"हमारे पहुँचने में विलम्ब से आपको जो असुविधा हुई उसके लिये हमें खेद है परन्तु हमें आपकी उदारता पर पूरा भरोसा है कि आप हमारी इस आकस्मिक त्रुटि को भूल जायेंगे। रामप्रकाश जी ने श्लेष से गरमी और तूफान की ओर संकेत किया है। यदि आप लोग मुझे तूफान समझना चाहते हैं तो मैं सहर्ष तूफान का बादल बनकर मौरिशस की भूमि और जनता के लिये, अपने अस्तित्व की अन्तिम बूंद तक बरस जाने से सन्तोष पाऊंगा। अपने देश के स्वातंत्र्य में से एक भारतीय की कर्त्तव्य भावना से और साहित्यिक क्षेत्र में अपने जीवन की सार्थकता के लिये मैं जो कुछ कर सका हूँ, आपने उसकी उदार सराहना की है परन्तु मैं इस द्वीप की प्राकृतिक शोभा और सम्पदा के साथ ही द्वीप-वासियों द्वारा मानवी अधिकारों के लिये पराक्रमी, सहिष्णु, संघर्ष और विजय की सराहना में निछावर हो सकना अपनी सार्थकता समझूंगा।"

रामप्रकाश जी ने अपने भाषण में द्वीप के प्राकृतिक वैभव के लिये मेरी सराहना का उल्लेख कर कहा था, "हमारा सौभाग्य है कि एक

महान लेखक को हमारा द्वीप सुन्दर-रमणीय लगा है। हमें आशा है कि इस द्वीप की सुषमा से पाये सन्तोष और प्रेरणा से यशपाल इस द्वीप को कोई स्थायी मूल्य की रचना दे जायेंगे।"

द्वीप की प्राकृतिक सुषमा से प्राप्त सन्तोष और प्रेरणा की चर्चा इससे पूर्व कई बार बातचीत में और टेलीविज़न पर भेंट-वार्ता में भी हो चुकी थी। इस प्रसंग पर जो पहले कहा था वही बात यहां भी दोहरायी :

"स्वीकार करता हूँ, इस द्वीप का प्राकृतिक सौन्दर्य अनूठा है। विश्राम, शान्ति और स्वास्थ्यदायक परन्तु प्राकृतिक शोभा से रचना के लिये प्रेरणा-स्फूर्ति पाना मेरी पहुँच से बाहर है। मैं रचना के माध्यम से अपनी बात सागर की तरंगों, नदियों, झरनों, झूमते वृक्षों, चटक चांदनी और सुनहली किरणों को नहीं सुनाता। न मेरी प्रेरणा का स्रोत मुख्यत: प्राकृतिक शोभा है।

"मैं मनुष्य हूँ, मेरा सम्बन्ध मानवी सुख-दुख और मानवी अनुभूतियों से है। मैं मानवी सम्बन्धों और सम्पर्कों से सुख-दुख, व्याकुलता, स्फूर्ति या प्रेरणा अनुभव करता हूँ और मानव समाज को सम्बोधन के लिये लिखता-बोलता हूँ।

"मैं इस द्वीप की प्राकृतिक शोभा से सन्तोष पाता हूँ परन्तु मेरा रागात्मक सम्बन्ध और सराहना इस द्वीप के वासियों के प्रति है। इस द्वीप की वर्तमान पीढ़ी के अधिकांश व्यक्तियों के पुरखा यहां दासों और शर्तबंद मजदूरों की कठिन स्थिति में आये थे। मेरा देश और सम्पूर्ण संसार इस द्वीप के वासियों द्वारा सहे शोषण और दमन के इतिहास से परिचित है और यह भी जानता है कि आपके पूर्वजों ने किस जीवट, सहिष्णुता और पराक्रम से इस द्वीप को बसाया और अपने शोषण और दमन की बेड़ियों को तोड़ कर स्वतन्त्र राष्ट्र के मानवी अधिकारों को पाया है। मानवता की इस विजय पर कौन सहृदय निछावर होने को

प्रस्तुत न होगा। मेरे लिये प्रेरणा का स्रोत इस देश की प्राकृतिक सुषमा नहीं, इस द्वीप के वासियों का दुर्दम निश्चय और जीवट है। आपकी संगति की स्मृति स्वदेश लौटकर भी मेरे लिये स्फूर्ति और प्रेरणा बनी रहेगी।'

२४ जनवरी संध्या चीनी उद्योग श्रमिक कल्याण समिति के मंत्री श्री बनवारी के यहां निमंत्रण था। चीनी इस द्वीप का मुख्य व्यवसाय है। विदेशी शासन के समय मौरिशस को चीनी का कारखाना बनाये रखने की ही नीति थी। स्वायत्त शासन हो जाने पर कई अन्य उद्योग स्थापित हो गये हैं। फिर भी मुख्य खेती गन्ना और मुख्य उद्योग चीनी बनाना है। इसलिये चीनी उद्योग श्रमिकों की संख्या का अनुपात सबसे अधिक है।

चीनी उद्योग श्रमिक कल्याण समिति को सरकारी मान्यता और सहायता प्राप्त है। इस समिति ने चीनी श्रमिकों की परिस्थितियों के सुधार के लिये बहुत काम किया है और कर रही है। श्रमिकों की पगार के उचित दरों की देख-भाल, उनके लिये मुनासिब किराये पर स्वास्थ्य और सुविधाजनक मकानों की व्यवस्था, उनके परिवारों के लिये चिकित्सा और मनोरंजन की व्यवस्था, बच्चों और वयस्कों के लिये भी शिक्षा की व्यवस्था। चीनी उद्योग श्रमिकों का संगठन द्वीप में सबसे बड़ा और सुव्यवस्थित है। यह संगठन ही देश के मजदूर दल का मुख्य सहारा है इसलिये देश की राजनीति में भी उसका विशेष प्रभाव है।

मौरिशस की जनता और सरकार के सामने लगभग वे सभी समस्याएं हैं जो हमारे देश के सामने हैं या किसी भी विकासशील देश के सामने आ रही हैं। मुख्य समस्या—बेरोजगारी या शिक्षितों की बेरोजगारी। यह द्वन्द्व की स्थिति है कि अपनी अवस्था सुधारने, अपने निर्वाह का स्तर उठाने और विकास के प्रयत्नों से हम ऐसी अनेक समस्याओं की भूमिका बना देते हैं।

किसी देश या समाज में अपनी अवस्था सुधारने के लिये पहला आवश्यक कदम है, देश-समाज में महामारियों, बीमारियों और शिशु-मृत्यु की रोकथाम। इसके साथ ही उत्पादन बढ़ाने के लिये यन्त्रों का उपयोग और शिक्षा प्रसार से बेहतर जीवन-स्तर का परिचय और उसके लिये योग्यता।

चिकित्सा विज्ञान के विकास और साधनों से रोगों की रोक-थाम बहुत हद तक हो जाती है। इससे समाज में मृत्यु-संख्या का अनुपात घट जाता है परन्तु समाज में जन्म-संख्या का अनुपात घटाने के लिये विशेष चेतना और सावधानी जरूरी होती है। परिणाम में राष्ट्रों की जनसंख्या शीघ्रता से बढ़ने लगती है। उत्पादन में यन्त्रों के प्रयोग से उपयोगी वस्तुएं सुलभ होती हैं परन्तु जिस काम के लिये पहले दस व्यक्तियों की आवश्यकता थी, मशीनों की सहायता से उसे एक-दो व्यक्ति कर सकते हैं। उत्पादन का क्षेत्र भी बढ़ता है परन्तु उत्पादन श्रम के लिये अपेक्षाकृत कम व्यक्तियों की आवश्यकता है। इसके साथ जनसंख्या की वृद्धि बेकारों की संख्या को अधिक अनुपात में बढ़ा देती है। शिक्षा प्रसार से बेहतर जीवन-स्तर का परिचय पाकर उसके लिये मांग और असन्तोष बढ़ाता है। विकास का मार्ग ही है: जरूरतों और समस्याओं को बढ़ाना और उनकी पूर्ति और समाधान के प्रयत्न करना। हमारे देश ने गत पच्चीस वर्ष में शिक्षा, औद्योगिक विकास और उत्पादन में जो विकास और बढ़ती की है, विकसित राष्ट्र भी उसकी सराहना करते हैं परन्तु जनसंख्या में अनुपात से अधिक वृद्धि के कारण हमारा समाज और राष्ट्र बेरोज़गारी और बेकारी की समस्या से उत्तरोत्तर परेशान हो रहा है। वही स्थिति मौरिशस में भी है। स्वास्थ्य सम्बन्धी स्थिति में सुधार और शिक्षा प्रसार के परिणाम में जनसंख्या में शीघ्र वृद्धि हो रही है और बेरोज़गारी, विशेष कर शिक्षितों में, समस्या उग्र रूप ले रही है।

चीनी उद्योग कल्याण समिति के प्रधान श्री बद्री इस स्थिति पर

चिन्ता प्रकट कर रहे थे । मैंने कहा—मनुष्य सदा मृत्यु से भयभीत रहा है और मृत्यु को जीतने, वश कर सकने की चिन्ता करता रहा है। चिकित्सा विज्ञान के विकास ने मृत्यु को पूर्णतः नहीं जीत लिया परन्तु मनुष्यों की औसत आयु बढ़ाकर मृत्यु को बहुत पीछे जरूर ढकेल दिया है । अब मनुष्य समाज अपनी इस सफलता से ही परेशान है इसलिये जरूरत है, मनुष्य समाज सन्तान के जन्म पर वश पाये । परिवार नियोजन ही उसे स्वयं उत्पन्न किये भावी संकट से बचा सकेगा । वर्ना मनुष्य की जनसंख्या ही उसे खा जायेगी । आपके यहां बर्थकण्ट्रोल या परिवार नियोजन की चेतना के लिये यत्न दिखायी दे रहे हैं परन्तु उस और अधिक प्रयत्न की जरूरत है।

सरकार की ओर से द्वीप के समाज में ऐसी प्रेरणा के प्रयत्न हैं। बद्री भाई ने स्वीकारा—समझदार लोग स्वयं भी परिवार नियोजन की जरूरत समझते हैं परन्तु जनता में ऐसा वर्ग भी है जो अपने साम्प्रदायिक विश्वासों के कारण जन्म-नियोजन को पाप कहते हैं । कुछ लोग डेमोक्रेसी-प्रजातंत्र में अपने वर्ग का राजनैतिक सामर्थ्य बढ़ा सकने के लिये अपने लोगों को अपने वर्ग की संख्या बढ़ाते जाने की सलाह देते हैं । ऐसे लोगों के कारण परिवार नियोजन करने वाला वर्ग दोहरा नुकसान सहता है । देश की जनसंख्या बढ़ने से तो उन्हें परेशानी होगी ही । अनुपात में दूसरे वर्गों की संख्या बढ़ती जाने से, व्यवस्था में उनका प्रतिनिधित्व या शक्ति भी घटेगी । इसका क्या उपाय ?

स्वीकार किया—हमारे देश में भी कुछ समाजों में ऐसी मूर्खतापूर्ण या आत्मघाती राजनैतिक सलाह की बातें सुनी जाती हैं । ऐसे लोगों की बातों से दूसरे समाजों को घबराहट प्रकट करते भी सुना है । परन्तु व्यवहार में सभी लोग अपने सम्प्रदाय, वर्ग और समाज के हित से पहले अपने परिवार की चिंता करते हैं । सभी जानते हैं कि परिवार में सन्तानों की संख्या आय या साधनों से अधिक बढ़ा लेने पर सन्तान का भविष्य

बेहतर बना सकने के अवसर घट जाते हैं और माता-पिता का जीवन भी संकटमय हो जाता है। ऐसे कितने लोग हैं जो अपने वर्ग या समाज की संख्या बढ़ाने के लिये अपनी सन्तानों का भविष्य और अपना जीवन बरबाद कर डालना चाहेंगे ? मेरे खयाल में वर्ग हित की ऐसी बातें दूसरों को सुनाने के लिये होती हैं। परिवार नियोजना का लाभ समझ लेने और उपाय जान लेने पर कौन स्वयं और अपने परिवार को बरबाद करना चाहेगा ? वास्तव में ज़रूरत है समाज में परिवार नियोजन की चेतना के प्रसार की और अधिक से अधिक लोगों को इसके उपायों की जानकारी देने की और उन्हें सुलभ बनाने की। विकसित और शिक्षित देशों और समाजों में लोग अपने जीवन स्तर को गिरने न देने के लिये, वैयक्तिक हित के विचार से सतर्क रहते हैं। परिणाम में उनकी जनसंख्या सीमित रहती है। विकसित देशों की तुलना में अविकसित और अशिक्षित देशों में जनसंख्या की भयानक बाढ़ चार-पांच गुनी अधिक है। परिवार नियोजन राष्ट्र हित के लिये ही नहीं, सामाजिक, पारिवारिक हित के लिये भी अनिवार्य है।

भारतीय मनोवृत्ति में और परम्परा में अध्यात्म और पारलौकिक चिन्तन की जड़ गहरी है। भारतीय अपनी इस प्रवृत्ति को मौरिशस भी ले गये हैं। मौरिशस में रामायण और कुरान के पीछे-पीछे आर्य समाज भी पहुँचा। आर्य समाज ने इस देश की तरह मौरिशस में भी हिन्दुओं के धर्म विश्वासों की रक्षा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा, संस्कृत और अपने राष्ट्रीय महत्त्व की रक्षा के अतिरिक्त द्वीप में मानवी न्याय की भावना और राजनैतिक जागृति की चेतना जगाने में भी बहुत योग दिया है। मौरिशस में मन्दिरों-मसजिदों के साथ कबीर मठ भी है और लगभग दो दशकों से रामकृष्ण सेवा मिशन का आश्रम भी कायम है।

रामकृष्ण सेवा मिशन के साधु प्रायः उच्च शिक्षित और उदार

विचार होते हैं। पारलौकिक चिन्तन से उदासीन लोग भी मिशन के जन सेवा कार्य के कारण इस संस्था के लिये आदर भावना रखते हैं। मिशन के स्थानीय प्रमुख स्वामी जी से प्रथम भेंट त्रिवेणी क्लब की कॉकटेल पार्टी में हुई थी। वाइन, ह्विस्की या साफ्ट ड्रिंक के गिलास थामे स्त्री-पुरुषों के जमघट में भगवा वस्त्र पहने स्वामी जी खाली हाथ मुस्कराते घूम रहे थे। स्वामी जी का अनुरोध था, २५ जनवरी संध्या उनके यहां विशेष कार्यक्रम—स्वामी विवेकानन्द की पुण्य तिथि के आयोजन में अवश्य सम्मिलित होऊं।

भारतीय जन जागरण के इतिहास में स्वामी विवेकानन्द की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विवेकानन्द अध्यात्म उन्मुख थे परन्तु समाज और संसार से निरपेक्ष नहीं। विद्यार्थी जीवन में उनकी पुस्तकों से बहुत उत्साह-प्रेरणा पाई थी। उनके दो वाक्य सदा याद रहते हैं—'नायमात्मा बल हीनेन लभ्यः', 'राष्ट्र और युवकों के उत्थान के लिये फुटबाल का मैदान भी मन्दिर की तरह आवश्यक है।' रामकृष्ण सेवा मिशन आध्यात्मिक प्रवचन और धर्म कीर्तन के आयोजन करता है परन्तु जन सेवा विशेषतः दीन जन की चिकित्सा-सेवा भी बहुत बड़े परिमाण में कर रहा है।

आयोजन के अवसर पर आश्रम के बंगले का विस्तृत हाता भक्तों की कारों से खचाखच भरा हुआ था। भारत की तरह मौरिशस में भी मिशन के भक्तों की संख्या उच्च शिक्षित, सम्पन्न वर्ग में अधिक है। इस का एक कारण मिशन में प्रवचनों की भाषा भी है।

हम लोग पहुँचे तो अनुष्ठान बंगले की बगल के लम्बे कमरे में आरम्भ हो चुका था। एक लम्बी चौकी पर परमहंस रामकृष्ण के चित्र पर फूल-मालाएं। परमहंस के चित्र के सन्मुख आरती की थाली में प्रज्वलित घृत दीप, नैवेद्य और पूजा की घंटी। भक्त लोग सन्मुख फर्शी दरी और चांदनी पर पाल्थी से भक्ति मुद्रा में बैठे थे। कमरे में स्थान शेष न था। हमें बगल के कमरे में खिड़की के साथ कुर्सियों पर स्थान

मिला। कुछ अन्य व्यक्ति भी वहां बैठे थे।

अनुष्ठान का आरम्भ स्वामी जी ने परमहंस के चित्र की पूजा-आरती से किया। एक संस्कृत श्लोक से उद्यापन हुआ। फिर भक्ति भाव के दो भजन समवेत स्वर में। सोच रहा था—पूजा अनुष्ठान के लिये विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, हनुमान की मूर्तियां और चित्र न थे। राम और कृष्ण की मूर्तियां, चित्र छोड़ कर उनके भक्त परमहंस राम कृष्ण की आत्मरत मुद्रा के चित्र की पूजा में क्या प्रगति या किस विशेष सिद्धि की आशा!

हिन्दी में दो भजनों के उपरान्त स्वामी जी का प्रवचन अंग्रेज़ी में। स्वामी जी दिखाई न दे रहे थे, सम्भवतः हमारी ओर दीवार के साथ खिड़की के नीचे पद्मासन से होंगे। प्रवचन अनुमानतः पुस्तक से स्वामी विवेकानन्द का भाषण या लेख पढ़ा गया। हिन्दी भजनों के पश्चात् प्रवचन अंग्रेज़ी में आरम्भ होने पर नन्दलाल और मैंने एक दूसरे की ओर देखा। दोनों को विस्मय। यदि भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति हिन्दी में भजनों से हो सकती है तो प्रवचन अंग्रेज़ी में क्यों आवश्यक? शायद अंग्रेजी के प्रयोग से स्वयं को ऊँचे बौद्धिक वर्ग में समझने का संतोष? प्रवचन के बीच में उठ जाना अशिष्टता समझी जाने के विचार से बीस मिनट तक बैठना पड़ा। प्रवचन की समाप्ति पर सभा को नमस्कार कर बाहर हो गये। सूर्यास्त के समय आध्यात्मिक प्रसंग की अपेक्षा सागर तट की ओशजन और आयोडीन भरी हवा फेफड़ों के लिये अधिक लाभदायक और सुखद थी।

२६ जनवरी, भारत के गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में भारत भवन, भारतीय उच्चायोग में संध्या छः बजे सम्मिलित आयोजन था। भारत-भवन वाकोआ में है। सुबह से कई बार हल्की फुहारें पड़ चुकी थीं। संध्या भी आकाश में बादलों की टुकड़ियां दौड़ रही थीं इसलिये आयोजन भवन के एक हाल में किया गया था। हाल के आयाम के अनुपात से

निमंत्रितों की संख्या बहुत अधिक थी।

मौरिशस के प्रधान मंत्री और मंत्री-मण्डल के सदस्य, राज-दूतवासों के राजदूत और द्वीप के सभी वर्गों के प्रतिनिधि आये थे। मौरिशस के गवर्नर जनरल सर उस्मान के प्रवेश के समय मौरिशस के राष्ट्रीय गीत की धुन और जन गण मन अधिनायक की धुन से स्वागत।

समारोह के उद्यापन के लिये महामहिम सर उस्मान और भारत के उच्चायुक्त महामहिम कृष्णदयाल कुछ ऊंची वेदी पर माइक के सामने आये। दोनों के हाथों में, उपस्थित समूह के हाथों में भी औपचारिक शील के अनुसार शुभकामना की अभिव्यक्ति के लिये शैम्पेन के प्याले-गिलास।

भारत के उच्चायुक्त ने प्रस्ताव किया—टु द क्वीन (ब्रिटेन की महारानी) के लिये मंगल कामना। अनुमोदन में सभी लोगों ने आचमन लिया।

महामहिम सर उस्मान ने प्याला उठाकर प्रस्ताव किया—टु द प्रेसी-डेंट आफ इण्डिया (भारत के राष्ट्रपति के लिये मंगल कामना)। समूह ने फिर आचमन से अनुमोदन किया। ऐसे अवसर पर लम्बे भाषण नहीं जंचते।

अपने समीप खड़े मौरिशसियों (भारतीयों के वंशज) की ओर ध्यान गया—टु द क्वीन के प्रस्ताव पर उन्होंने रीति अनुकूल आचमन से अनु-मोदन किया परन्तु चेहरों पर तनाव की छाया। भारत के राष्ट्रपति के लिये मंगल कामना हो जाने पर समूह में बातचीत आरम्भ। एक सज्जन ने पूछा—"ऐसे अवसर पर आपके यहां भी 'टु द क्वीन' चलता है?"

"हमारे यहां इसकी संगति? भारत ब्रिटिश कामनवेल्थ में जरूर है परन्तु पूर्ण स्वतंत्र सार्वभौम सत्ता गणतंत्र। गणतंत्र में राजा-रानी से मतलब? यहां रानी के लिये मंगल कामना आपके गवर्नर जनरल के आदर और आपकी सरकार के संतोष के लिये।"

"सन् १६६८ से हमारा द्वीप भी स्वतंत्र है परन्तु अभी हम गणतंत्र नहीं हैं, ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतंत्र हैं। हमारी भूमि और साधनों और अन्तरराष्ट्रीय स्थिति के विचार से हमारी अनेक मजबूरियां हैं।"

इस द्वीप में अनेक वैचित्र्यों के समन्वय की ओर आरम्भ में ही संकेत किया है। हमारे यहां कुछ फूल गरमी-बरसात में खिलते हैं, कुछ शीत-काल और वसन्त में। इस द्वीप में दोनों ऋतुओं के फूल—जिन्निया, बालसम और डेलिया-फ्लाक्स एक साथ खिलते देखे। यहां के राजकीय प्रोटोकोल या व्यवहार में भी कुछ वैचित्र्य जान पड़ते हैं। द्वीप स्वतंत्र है और वैधानिक रूप से ब्रिटिश साम्राज्य का अंग भी है परन्तु इनका राष्ट्रीय ध्वज ब्रिटिश साम्राज्य का यूनियन जैक नहीं, मौरिशस का चतुरंग—काला, पीला, हरा, लाल झण्डा है। यहां का राष्ट्रीय गीत भी ब्रिटिश साम्राज्य का राष्ट्रीय गीत 'लांग लिव द क्वीन' नहीं 'ग्लोरी टु दी मदर लैण्ड' (जय हो मातृभूमि तुम्हारी !) है। राष्ट्रगीत अंग्रेजी में है।

उड़ती-उड़ती बात सुनी कि कुछ वर्ष पूर्व देश के राष्ट्रीय गीत के निर्णय के लिये एक समिति बनायी गयी थी। समिति के सामने चुनाव के लिये तीन-चार गीत थे अंग्रेज़ी, फ्रेंच और हिन्दी में। हिन्दी में गीत का आरम्भ था—'जय जय मातृभूमि मौरिशस द्वीप'। भारतीय वंशजों की इच्छा थी कि द्वीप का राष्ट्रीय गीत हिन्दी में हो। समिति में सभी वर्गों के प्रतिनिधि थे। मुस्लिम प्रतिनिधि के हिन्दी गीत का समर्थन न करने के कारण अंग्रेज़ी में गीत स्वीकार किया गया। अंग्रेज़ी गीत के सम्बन्ध में सुना है कि उसमें मातृभूमि का जयकार तो है परन्तु मौरिशस द्वीप का नाम गीत में नहीं है।

मौरिशस ब्रिटिश साम्राज्य में है परन्तु यहां सरकारी दफ्तरों या मंत्रियों के मकानों में ब्रिटिश महारानी का चित्र नहीं दिखायी देता। महारानी के चित्र के बजाय दिखायी देता है प्रधान मंत्री रामगुलाम का चित्र और महात्मा गांधी का चित्र। महत्त्वपूर्ण स्थानों पर कुछ अंग्रेज

गवर्नरों की मूर्तियां हैं परन्तु महात्मा गांधी और डाक्टर मनीलाल की मूर्ति भी है। कुछ स्थानों के नाम गांधी जी के नाम पर हैं। अधिक विस्मय हुआ पोर लुई के सरकारी या सार्वजनिक उद्यान में लेनिन का बस्ट (धड़ की मूर्ति) देख कर। वहां सभी समन्वय सम्भव। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत किसी अन्य देश में शायद ही ऐसा हो।

२७ जनवरी संध्या मौरिशस-भारत मैत्री संघ की ओर से भारत गणतंत्र दिवस के उपलक्ष में सम्मिलन और कॉक्टेल पार्टी में उत्साहपूर्ण जमाव। प्रधान मंत्री तथा अन्य सभी मंत्री उपस्थित थे। भारतीय उच्चायुक्त महामहिम कृष्णदयाल ने भारत के प्रति मैत्री और सद्भावना के लिये मौरिशस की जनता का आभार स्वीकार कर संक्षेप में भारत के पंचशील के सिद्धान्त और अन्तरराष्ट्रीय गुटों से निरपेक्षता की चर्चा की—सामरिक शक्ति के सन्तुलन की नीति केवल प्रवंचना है, बड़ी शक्तियों द्वारा परस्पर होड़ में अधिकाधिक संहारक शक्ति संचय के लिये बहाना। ऐसी होड़ का अन्त कहां ? परिणाम है अन्तरराष्ट्रीय आतंक और अशान्ति। भारत ऐसी अन्तरराष्ट्रीय गुटबाजी से दूर है, और दूर रहना चाहता है। भारत सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों की भौगोलिक सीमाओं में उनकी सार्वभौम सत्ता, स्वतंत्रता, आत्मनिर्णय के अधिकार और अवसर का समर्थक है। भारत वर्ण, जाति साम्प्रदायिक विश्वासों के साम्य अथवा भेद से पाले-बाज़ी में या सामरिक गुटबन्दी को अनैतिकता और अन्तरराष्ट्रीय अपराध समझता है। परन्तु भारत की निरपेक्षता का अर्थ अन्तरराष्ट्रीय अन्याय और निर्बल पर अतिक्रमण से आंख मूंद लेना नहीं है न विकासशील सहयोगी राष्ट्रों की उपेक्षा और उनसे उदासीनता का है। भारत सभी राष्ट्रों के पारस्परिक सह-अस्तित्व और सहयोग में विश्वास करता है। भारत और मौरिशस की प्रजा में अतीत परम्परा, भाषा और संस्कृति साम्य के सम्बन्ध तो हैं ही भविष्य में सहयोगी और

परस्पर सहायक हो सकने की इच्छा और विश्वास के सम्बन्ध भी हैं। इस द्वीप को हमारे सहयोग-सहायता किन्हीं शर्तों या मोल पर नहीं, मानवी सद्भावना और संस्कृति के सम्बन्ध से है। जय मौरिशस! जय हिन्द!

प्रधान मंत्री रामगुलाम ने भारत की सामरिक गुट निरपेक्षता और अन्तरराष्ट्रीय सहयोग की नीति में मौरिशस सरकार का विश्वास और भरोसा प्रकट कर अन्तरराष्ट्रीय कल्याण के लिये भारतीय नीति की सफलता की कामना की। कृषि मंत्री श्री बुलेल ने स्वार्थान्ध पाले-बाजी से उलझी वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय स्थिति में भारत द्वारा निस्वार्थ भाव और साहस से अन्तरराष्ट्रीय न्याय की रक्षा के लिये निर्बल राष्ट्रों पर अतिक्रमण के विरोध और निर्बल राष्ट्रों के साहसपूर्ण समर्थ तथा सहायता की सराहना की—हमारे लिये भारत जिस तरह संस्कृति के क्षेत्र में प्रेरणा का स्रोत है, उसी प्रकार साम्प्रदायिकता और वर्गभेद रहित लोकायत समाजवादी अर्थनीति, शासन पद्धति और अन्तरराष्ट्रीय नीति में भी हमारे लिये भारत का अनुसरण श्रेय है। सुपर पावर्स के वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय द्वन्द्व में हमारी रक्षा भारत की सामरिक गुट्ट निरपेक्ष नीति से ही सम्भव है। भारत निश्चय हमारा स्थायी विश्वस्त मित्र और सहायक हो सकता है।

पार्टी में आपनाक (पीना-पिलाना) दुराव और संकोच को शिथिल कर देता है।

लोग कुर्सियां खींच कर अपनी रुचि के प्रसंगों पर बात-चीत के लिये जगह-जगह गोल बांध कर बैठ गये थे। दो सप्ताह में कुछ लोगों से अनेक बार भेंट हो चुकी थी। टेलीविज़न पर मुझे देखने—मेरी बात सुनने के बाद विचार-विनिमय की इच्छा।

एक बैरिस्टर बोले—हम विदेशी शासन की जकड़न से छूट गये परन्तु स्वतंत्रता [illegible]विक स्वतंत्रता कहां है? यहां पत्रों पर सेन्सर,

सार्वजनिक भाषणों, मुद्रण संगठन—सब क्षेत्रों में सरकारी चौकसी और नियंत्रण चालू है। यह स्वतंत्रता है?

शासन की ओर से ऐसी चौकसी या प्रतिबंधों के विषय में कुछ लेखकों से भी सुना था—कुछ संगठनों ने वैधानिक या जनतांत्रिक उपायों से बहुमत के वर्तमान शासन को बदल सकने की सम्भावना न देखकर मिलिटेंट मूवमेंट (सशस्त्र विरोध का कार्यक्रम) आरम्भ करने का यत्न किया था। जांच-पड़ताल से कुछ शस्त्रास्त्र बरामद भी हुये थे। सार्वजनिक शांति की रक्षा के लिये प्रचार के माध्यमों और संगठन के प्रयत्नों पर निगाह रखी जा रही है।

स्थिति के बारे में मेरी राय के लिये अनुरोध पर कहा—किसी भी विचारधारा, नीति या कार्यक्रम का सैद्धांतिक पक्ष जनता के सामने रखने की स्वतंत्रता, प्रगति का मार्ग खुला रखने के लिये आवश्यक है। परन्तु जनता को बरगला कर उत्तेजित करने या सशस्त्र विरोध का अवसर देने की उदारता किसी भी शासन के लिये उचित या सम्भव नहीं हो सकती। पूर्ण स्वतंत्रता एक आदर्श है। जनतंत्र अधिकारों के नाम पर बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु अन्य व्यवहारों की तरह स्वतंत्रता भी सापेक्ष होती है। सभी सिद्धान्तों पर देश-काल के अनुसार सापेक्ष रूप में ही व्यवहार किया जा सकता है। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक सरकार स्वीकृत स्थिति की समर्थक और तुरन्त परिवर्तन की विरोधी होती है।

मौरिशस में केवल दो सप्ताह रह कर वहां की राजनैतिक स्थिति को गहराई से समझ लेने के भरोसे उस सम्बन्ध में राय देना समझदारी न लगी। अपने देश के अनुभव से इतना जरूर कह सकता हूं, प्रजा शासन की आलोचना कर सके; यह दमन का लक्षण नहीं है।

सुबह दस के लगभग बाहर निकल गये। नगर के कई स्कूल-कालेज

देख चुके थे। मौरिशस में हायर सेकेण्ड्री स्कूलों या सीनियर क्रैम्ब्रिज की शिक्षा देने वाले स्कूलों को कॉलिज कहा जाता है। किसी भी देश की संस्कृति और शिक्षा का स्तर उस देश के देहाती प्राइमरी स्कूलों की स्थिति से मालूम हो सकता है। ऐसे स्कूल देखने की इच्छा थी। किसी स्कूल कालेज के निमंत्रण पर जाने से प्रदर्शन के लिये सजी संस्था की वास्तविक स्थिति सामने नहीं आती।

'प्लैन विलहेल्म' का समतल क्षेत्र केरपिप से भी ऊंचा है। मौसम शीतल सुहावना था। 'नूवेल फ्रांस' गांव में सड़क पर स्कूल का चिह्न, सवारियों को सड़क पर बच्चों की सम्भावना से सावधान करने के लिये देखा।

यह स्कूल देखा जाय—नन्दलाल से अनुरोध किया।

स्कूल कमरों की दो समानान्तर पांतों में है, बीच में खुली जगह। विद्यार्थियों की संख्या स्थान से अधिक हो जाने के कारण स्कूल दो पालियों (शिफ्ट) में, दोपहर-पूर्व और दोपहर बाद लगता है। हम पहुँचे तो बीस मिनट का विश्राम था। दो और बालकों के क्यू खड़े। बालकों के हाथों में छोटे मग थे। दो अध्यापक ड्रम से बालकों के मग में दूध डाल रहे थे और समीप रखी बोरियों से एक एक बन (मीठी पावरोटी) देते जा रहे थे।

याद आया—कुछ समय पूर्व पत्रों में पढ़ा था कि अविकसित देशों के बच्चों के स्वास्थ्य के विचार से यू० एन० ओ० से दूध का चूर्ण उन देशों के आरम्भिक स्कूलों में दिया जाता था। इस सम्बन्ध में टिप्पणियां देखी थीं कि चूर्ण को ढंग से दूध बना कर बच्चों को दे सकने की व्यवस्था कुछ ही देशों में बेहतर स्तर के, अधिक शुल्क लेने वाले स्कूलों में ही हो सकी थी, जहां प्राय: आसूदा हाल परिवारों के बच्चे पढ़ते हैं। निःशुल्क या ग्रामीण प्राइमरी स्कूलों में दूध के चूर्ण की चुटकियां बच्चों की हथेलियों पर दे दी जाती थीं। वह चूर्ण फांक लेने से बच्चों के पेट खराब

हो जाते इसलिये दूध का चूर्ण स्कूलों के प्रबंधकों, अध्यापकों और चाकरों के घरों में काम आता था। इसके लिये सब दोष उन स्कूलों के अध्यापकों को नहीं दिया जा सकता था। स्थिति थी कि स्कूलों को दूध का चूर्ण दिया जाता था परन्तु दूध तैयारी के लिये, पानी उबालने के लिये बर्तन-ईंधन की व्यवस्था न की जाती थी। मौरिशस में यह काम सुचारु रूप से होते देखकर संतोष हुआ।

अध्यापक अधिकांश भारतीय वंशज दिखायी दिये। कोई भी अध्यापक फूहड़, मली-मसली, अधूरी पोशाक में न था। कॉलेज के अध्यापक सूट-टाई में, अध्यापिकाएं ठीक बंधी साड़ी या यूरोपियन वेश में। गांव के प्राइमरी स्कूलों में भी अध्यापक ताजा इस्त्री की हुई, सफेद कमीज-टाई और पतलून पहने थे। टाई न होने पर भी कमीज-पैंट मैले-मसले न थे। स्कूलों में पानी के नल, हाथ-मुंह धोने के लिये उचित व्यवस्था। सफाई और अनुशासन का वातावरण।

नूवेल फ्रांस के प्राइमरी स्कूल में उस शिफ्ट में दो सौ बालक थे। बातचीत के समय उर्दू अध्यापिका भी मौजूद थी। उसकी पोशाक तंग पाजामा-कुर्ता-दुपट्टा। उर्दू अध्यापिका से पूछा—"सब जमातों को उर्दू आप ही पढ़ाती हैं। जमातों में औसतन कितने तुलबा रहते हैं?"

उर्दू अध्यापिका अपलक देखती रह गयी।

प्रश्न दोहराया—" आप उर्दू के पांचों क्लास पढ़ाती हैं। क्लास में कितने स्टूडेंट रहते हैं?"

अध्यापिका ने बताया—"इस स्कूल में उर्दू पढ़ने वाले कम हैं। सत्रह बच्चे उर्दू पढ़ते हैं। किसी क्लास में चार किसी में पांच। पहली दूसरी कक्षा के बच्चे एक साथ बैठ जाते हैं।"

अध्यापकों से पूछा—"इस ओर समीप ऐसे गांव हैं जहां कच्ची सड़कें, कच्चे मकान या फूस की छत की झोपड़ियां हैं। हम सम-स्तर के ग्रामीणों का रहन-सहन देखना चाहते थे।"

उत्तर मिला—यहां से आठ-दस मील आगे ऐसा गांव है। बसों के लिये सड़कें सब जगह पक्की बन गयी हैं। बिजली और पानी के नल भी सब जगह पहुँच गये हैं। उन पर टीन की छतें हैं। फूस की झोपड़ी बहुत कम ही दिखेगी।

तीन-चार मील आगे दूसरा प्राइमरी स्कूल मिला। इस स्कूल की इमारत बड़ी और दो मंजिल थी। यह गांव भी नुवेल फ्रांस से बड़ा था। दस-बारह मील आगे जाकर दूसरे रास्ते वाकोआ लौटे। फूस की छतें दिखाई न दीं।

उस संध्या कुछ लोगों से नुवेल फ्रांस की उर्दू अध्यापिका के उर्दू ज्ञान की चर्चा के समय सुना—कुछ बरस पहले भारतीय नृत्य-संगीत और हिन्दी शिक्षा में सहायता के लिये कुछ अध्यापक भारत से बुलाये गये हैं। उर्दू प्रेमी जनता ने मांग की, उर्दू के शिक्षक भी बुलाये जाने चाहिये।

मौरिशस के शिक्षा मंत्रालय के अनुरोध पर भारत सरकार ने अलीगढ़ से दो उर्दू शिक्षक द्वीप में भेज दिये। उर्दू प्रेमी समाज ने आपत्ति की—उर्दू के शिक्षक भारत से क्यों बुलाये गये? उर्दू शिक्षक पाकिस्तान से आने चाहिये।

उनसे राय ली गयी—उर्दू शिक्षक पाकिस्तान के किस भाग या नगर से बुलाना बेहतर होगा? पूर्व पाकिस्तान में ढाका से या पंजाब में लाहौर से या क्वेटा बलोचिस्तान से या कराची पेशावर से?

हमारी सुविधा के विचार से या हमें द्वीप में अधिक समय रखने के लिये दोपहर से पूर्व या बाद प्रतिदिन एक ही कार्यक्रम रखा जाता था। रविवार 'प्लेन पपाया' (पपीता बाग) के युवक संघ का आयोजन सुबह दस बजे था। आयोजन का प्रबंध प्लेन पपाया के इरोज़ सिनेमा घर में था। त्रिओले की भांति स्वागत-अभिनन्दन के साथ कुछ साहित्यिक प्रसंग भी रहे।

इरोज़ में कार्यक्रम बारह तक समाप्त हो गया। नारायण दम्पत्ति 'ग्रां बे' (बड़ी खाड़ी) में हमारी प्रतीक्षा में थे। पपीता बाग से सागर तट के लिये चल दिये। 'ग्रां बे' विस्तृत और सुन्दर खाड़ी है, तैरने के लिये सुविधाजनक। द्वीप की नाव प्रतियोगिताएँ इसी खाड़ी में होती हैं। सागर तट की सड़क पर कई मील उत्तर की ओर 'पियरे बेर' के रमणीक तट पर कुछ देर बैठ कर 'आन्स ले रे' की ओर बढ़ गये। सड़क लगातार सागर के नीले आंचल पर गोट की तरह। आन्स ले रे बहुत चटकीली रेती, खूब खुला तट और रेतीले तट से लगता, यत्न से संवार-पोस कर रखे हुए बड़े लॉन जैसा हरा मैदान। हरे मैदान में चंवर से झूमते पत्तों के घने वृक्षों के नीचे दो सुथरे रेस्त्रां। उनके पीछे विस्तीर्ण लॉन की सेज के अनुरूप उतने ही विशाल गाँव तकिया जैसे हरियावल ढके टीलों की उठान।

दोपहर आहार का समय रमणीक स्थान और सुथरे रेस्त्रां से रोचक आहार की सुवास। 'फीनिक्स बियर' और तृप्तिदायक आहार के बाद सुहावनी फरफराती हवा में लॉन की हरी सेज पर, धूप रोके झूमते वृक्षों के नीचे, कमर सीधी कर लेने के लिये लेट गये। घास पर लेटे-लेटे नीले विस्तार को चीर कर फेन की रेखायें छोड़ती छोटी मोटर नावों के पीछे जंजीरों से बंधे खिचते तख्तों पर पांव जमा कर शरीर तौले खड़े, मोटर नौका की गति से नील सागर पर फिसलते जाते युवकों को देख रहा था।

शंका हुई कुछ कदम पर दो लड़के अठारह-उन्नीस की आयु के कनखियों से मेरी ओर देख-देख कर मंडरा रहे हैं। लड़के सागर तट की शैवाल कंधों, कमर और घुटनों पर लपेट कर वन्य-शृङ्गार किये थे, जैसे वल्कलधारी समाज के युवक किसी नृत्य समारोह के लिये सजे हैं। उनके कनखियों से देखने और झिझक से शंका—शायद मुझे नींद में समझ कर मेरी जेब साफ कर डालने के अवसर की प्रतीक्षा में हैं। किसी भी देश के सागर तट पर ऐसी एडवेंचर या शरारत बहुत सम्भव।

लड़कों से नजर मिल जाने पर, उनकी ओर संकेत से पूछा—"क्यों, क्या बात है ?"

लड़कों ने झिझक से एक दूसरे की ओर देखा और बढ़ आये। उनसे बातचीत के लिये उठ कर बैठ गया।

"सर, यू आर राइटर फ्रॉम इण्डिया ?"

अनुमान किया—इन लोगों ने शायद किसी पत्र में, किसी कार्यक्रम के समाचार के साथ फोटो देखा होगा। दो दिन पूर्व हजामत के लिए एक नाई की दुकान पर ऐसे ही पहचान लिया गया था। नवयुवकों को बैठने का संकेत किया। दोनों समीप घास पर बैठ गये।

"सर, आपको टेलीविजन पर देखा था। मिस्टर यशपाल ?" दूसरे ने अंग्रेजी में कहा।

मेरे स्वीकार करने पर वह बोला, "टेलीविजन पर आपसे इंटरव्यू हिन्दी में हुआ था। हम ठीक-ठीक समझ नहीं पाये ?"

"क्या पूछना चाहते हो ?"

नन्दलाल कौतूहल से समीप आ गये थे। नवयुवक ने पूछा, "हमारा द्वीप आपको कैसा लगा ?

"बहुत सुहावना सुन्दर परन्तु इस द्वीप के समुद्र तट पर गल्स बहुत कम हैं।"

"सर गल्स क्या होता है ?"

"समुद्री सफेद कौआ।"

"गल्स हैं लेकिन भोजन की तलाश में बन्दरगाह में जहाजों के आस-पास रहते हैं" नवयुवकों ने बताया।

"हमारे यहां सफेद कौआ कम है। काला कौआ तो है ही नहीं।" नन्दलाल बोले, "गैरेया, तोता-मैना, बुलबुल, फाख्ता, नीलकंठ सब हैं परन्तु मोर नहीं और कौआ भी नहीं। इस द्वीप में सांप भी नहीं हैं इसीलिये हम 'मौरिशस को गार्डन आफ ईडन विदआउट सर्पेंट'

(स्वर्गोद्यान बिना सांप) कहते हैं।"

नन्दलाल बताते गये—"सुना है, कुछ लोग द्वीप में सांप लाये थे परन्तु सांप यहां की प्रकृति में जीवित नहीं रह सका।"

"सांप लाने-रखने की कोशिश क्यों?" विस्मय से पूछा।

"खेतों में मूसों की व्याधि की रोकथाम के लिये।"

"मूसों की रोकथाम के लिये सांप पालना कौन समझदारी? मूसों के उपाय के लिये अनेक औषध हैं। यहां बिल्लियां तो हैं।"

"इस द्वीप की प्रकृति रेंगने वाले सांपों को नहीं सहती परन्तु दोपाये सांप मौजूद हैं।" नन्दलाल के स्वर में खिन्नता की खनक आ गयी। अपने ज़हर से द्वीप की जनता में सहयोग, शान्ति नहीं पनपने देते। जिस समय द्वीप की प्रजा बालिग मताधिकार और पूर्ण स्वतंत्रता के लिये आन्दोलन कर रही थी वे लोग बालिग मताधिकार और स्वतंत्रता का विरोध कर रहे थे। सम्प्रदायों और वर्गों में सम्प्रदाय और रक्त-जाति भेदों के नाम पर अविश्वास वैमनस्य फैला रहे थे। अमुक सम्प्रदाय और वर्ग के लोग अपनी बहुसंख्या से अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को कुचल डालेंगे। ऐसे लोग इस द्वीप से एशिया की संस्कृति और भाषाओं को समूल नाश कर देना चाहते हैं परन्तु वे अगोरे लोगों को भी योरोपियनों के समान कभी नहीं मानेंगे।

जिस समय द्वीप में सम्पूर्ण प्रजा को रंग, जाति, वर्ण, वर्ग सम्प्रदायों के भेदों के बिना मताधिकार के द्वारा चुनाव से प्रजा के प्रति उत्तरदायी शासन की मांग उठ रही थी उस समय यहां के भूपति और शेष साधनों के मालिक गोरे प्रजा में रंग, जाति, वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय के भेद भड़का कर उन्हें बहका रहे थे कि यह आत्मनिर्णय नहीं आत्महत्या की मांग है? उनका नारा था—'फ्रीडम मीन्स स्टार्वेशन'—स्वतंत्रता का अर्थ भूख से मौत परन्तु रामगुलाम के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे ने विजय पायी। अब उन सांपों के दांत टूट चुके हैं।

चौथे पहर तक आन्स ले रे में विश्राम कर लौट रहे थे। रोज़हिल में दक्षिण चौराहे पर लाल बत्ती के कारण गाड़ियां रुकी हुई थीं। हमारे सामने की गाड़ी अपने आगे की गाड़ी से बहुत अधिक अन्तर छोड़ कर रुक गई थी। नन्दलाल बायें से बढ़ कर उस गाड़ी से आगे निकल रहे थे तब तक हरी बत्ती हो गई।

आवाज़ में धमकी—स्टॉप-स्टॉप।

नन्दलाल धमकी अनसुनी कर दाहिने मुड़ रहे थे। पीछे से फिर रुकने के लिये धमकी। पीछे रही गाड़ी एक यूरोपियन चला रहा था।

"बहुत नाराज़ हो गया है।" मैंने कहा। चेहरा उसका लाल माल्टे जैसा हो गया था।

"बकने दीजिये जाहिल को।"

"ओवरटेक करना तो गलती ही थी, तिस पर बायें से।" मैंने कुरेदा।

"भलमनसाहत से एतराज़ करता तो खेद प्रकट किया जा सकता था कि उसने गाड़ी इतनी दूर क्यों रोकी। भौंकने का क्या जवाब?" गलती होने पर रोक-टोक पुलिस का काम। इसका दिमाग "अभी पुराने नशे में है।"

"१६६८ में यहां स्वराज्य होने से पूर्व यूरोपियनों का ऐसा ही ढंग था?"

"ऐसा?...इससे बहुत बदतर। ये लोग अगोरों और भारतीयों को अपने उपयोग और सेवा के लिये द्वीप में लाये गये दोपाये पशु समझते थे। अब भी समझना चाहते हैं। अगोरों और भारतीयों को यूरोपियन से समता का दावा वे अपना राष्ट्रीय अपमान समझते थे। बहुत से स्थानों में अगोरे और भारतीयों का कदम रखना तक कानूनन अपराध था।"

अगोरों का मंत्रीमंडल और अगोरा प्रधान मंत्री बन जाना, ऊँचे पदों पर अगोरों की नियुक्ति मौरिशसी गोरों के लिये असह्य था। बहुत से गोरे द्वीप छोड़ कर इंगलैंड, दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया चले गये।

कुछ वहां पांव न जम पाने के कारण लौट भी आये हैं। इनमें से बहुतों की मनोवृत्ति अब भी नहीं बदली है। अब उन्हें स्वयं को शासक बिरादरी मानने का अवसर नहीं परन्तु द्वीप की प्रजा में परस्पर अविश्वास-वैमनस्य फैलाकर, इस-उस वर्ग को पैसे के ज़ोर पर अपना पिट्ठू बना सकने की धूर्तता जारी है। ये ही हैं इस द्वीप की हरियावल में छिपे दोपाये सांप।

त्रिओले, प्लेन पपाया, प्लेन मायां, गुडलैण्ड आदि में आयोजन हो चुके थे परन्तु हिन्दी लेखकों को अपनी एक पृथक बैठक करने का आग्रह था। यह बैठक हुई पोर लुई के 'लुई ला शेल' हॉल में। द्वीप के हिन्दी लेखकों के अध्ययन और ग्राह्यता के व्यापक होने का अवसर है। प्रायः सभी लेखक अंग्रेजी और फ्रांसीसी साहित्य से परिचित हैं। विभिन्न संस्कृतियों और जीवन पद्धतियों के निकट परिचय के कारण उन्हें सभी प्रकार की समस्याओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार का अवसर है।

लेखकों की विशेष गोष्ठी का प्रयोजन था, निःसंकोच और अन्तरंग विचार विनिमय का अवसर। चर्चा में रचना प्रक्रिया से सम्बद्ध वही प्रश्न जो सचेत लेखकों की किसी भी गोष्ठी में उठ सकते हैं; रचना आत्मरति के उच्छ्वास या आत्मतोष की अभिव्यक्ति के लिये या सामाजिक चेतना और दायित्व से सप्रयोजन रचना! लेखक आत्मविवेक अन्तःप्रेरणा का अनुसरण करे या स्वीकृत प्रतिबद्धता का निर्देश माने? जनमत, सामाजिक नियमन और शासन के प्रति लेखक का रुख?

इन प्रश्नों पर मेरे विचार गत वर्षों में बदले नहीं हैं। चर्चा आरम्भ करने के लिये संक्षेप में कहा—मेरे विचार और कल्पना में लेखक और कलाकार का अस्तित्व समाज से पृथक सम्भव नहीं है। इसलिये मेरे विचार में समाज और उसकी समस्यों से लेखक की निरपेक्षता की कल्पना ही संगत या उचित नहीं। लेखक का स्वान्तः सुखाय सन्तोष भी सामाजिक भावना और सामाजिक सन्तोष से पृथक या उसके विपरीत

सम्भव नहीं हो सकता। समाज की उपेक्षा या समाजहित के विरुद्ध सन्तोष की कल्पना, अपने पांव तले की डाल काट कर सन्तोष पाने की कल्पना या इच्छा होगी। मेरे विचार में समाज के किसी भी व्यक्ति की ऐसी प्रवृत्ति आत्मघात होगा। एक लेखक या कलाकार के लिये ऐसी प्रवृत्ति घोर अपराध भी होगा।

कुछ लेखक रचना में उद्देश्यपरकता या किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता को लेखक की स्वतंत्रता का हनन समझते हैं। ऐसे लेखक अपनी रचना का प्रयोजन केवल मनोरंजन बताते हैं। साहित्य का प्रयोजन जन मनोरंजन मान लेने पर भी स्पष्ट है कि लेखक रचना अपने लिये नहीं, जन या समाज के लिये करता है और वह समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आप उसे मनोरंजन का ही उत्तरदायित्व कह दें, लेखक नकार नहीं सकता।

किसी भी प्रसंग से मनोरंजन, उस प्रसंग में रसानुभूति से या उस प्रसंग से रागात्मक सम्बन्ध से ही होगा। मनोरंजन देश-काल और समाज के संस्कारों के अनुसार होता है। मनोरंजन देश-काल और समाज के संस्कारों के अनुसार सुरुचि-कुरुचि का परिचायक या श्रेय, अश्रेय भी हो सकता है। अतीत में मनोरंजन के कुछ ऐसे माध्यम या ढंग रहे हैं जिनकी याद से आज समाज के प्रति उत्तरदायित्व से इनकार करने वाला लेखक भी ग्लानि का अनुभव करेगा। मनोरंजन के लिये तीतर, मुर्गे, मेढ़े या सांड़ लड़ाने की ही बात नहीं; सुना है, बर्बर रुचि के कुछ लोग ज़ख्मी जानवरों के घावों पर नमक-मिर्च छिड़क कर उनकी व्याकुलता से तृप्ति अनुभव करते थे। किसी युग में दास योद्धाओं को मरणान्तक युद्ध में लड़ाकर मनोरंजन किया जाता था। अपराधियों और खरीदे हुए गुलामों को हिंसक पशुओं से निहत्थे लड़ाकर मनोरंजन किया जाता था। नाज़ियों द्वारा मनोरंजन के लिये यहूदी स्त्रियों के उपयोग और बांगला देश में पाकिस्तानी सेना द्वारा मनोरंजन के लिये युद्ध के मोर्चे पर खाइयों

में बांध कर रखी गयी युवतियों की कहानियों के बारे में सभ्य समाज क्या कहेगा ? मनोरंजन स्वतः कोई वस्तु या कल्पना नहीं हो सकती। वह सदा देश-काल वशेष के समाज के संस्कारों और भावना और आदर्शों के अनुसार होता है। कलाकार का आत्मतोष भी अपने परिवेश से उसके सम्बन्धों और मान्यताओं पर निर्भर करेगा।

लेखक के आत्मतोष के लिये रचना के अधिकार के प्रसंग में रवि ठाकुर का उद्धरण दिया जाता है। रवि ठाकुर ने कहा है—रचना का सन्तोष स्वयं अच्छी कविता या कहानी के सृजन में है। यह बात रवि ठाकुर जैसे व्यक्ति या कलाकार के लिये—जिसने स्वयं को मानव कल्याण की भावना में समाहित कर दिया हो—ठीक हो सकती है, किसी उच्छृङ्खल किशोर या अनुत्तरदायी व्यक्ति के लिये नहीं। किसी बस्ती में आग लगा कर तमाशा देखना चाहने वाले व्यक्ति के मनोरंजन या आत्मतोष के बारे में क्या कहा जायेगा ?

एक युवक का प्रश्न था—राजनैतिक प्रश्नों या लक्ष्यों से प्रतिबद्धता को क्या समझा जाये।

उत्तर दिया—राजनीति का अर्थ केवल चुनाव का अखाड़ा और पद के लिये होड़ नहीं। जनतांत्रिक व्यवस्था में और शासन पर जनकल्याण का उत्तरदायित्व मानने पर वैयक्तिक या सामूहिक जीवन का कौन पहलू राजनीति की परिधि से बाहर रह जाता है। जब जीविका के अवसर, जीविका के साधन, समाज का उत्पादन सभी कुछ सामूहिक निर्णय से शासन की सहायता और नियंत्रण में हो तो हमारा जीवन ही राजनीति हो जायेगा। आधुनिक समाज में कौन प्रश्न राजनीति से बाहर है ? विवाह किस आयु में होना चाहिये, स्त्री-पुरुष कितने पति-पत्नी कर सकते हैं, कितनी सन्तान उचित है और उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य के लिये समाज या सरकार का उत्तरदायित्व मानना है तो हम राजनीति से कैसे भाग सकते हैं ! समाज में उचित व्यवस्था के प्रति सतर्कता ही

राजनैतिक प्रतिबद्धता है।

फिर प्रश्न—कलाकार या लेखक को राजशक्ति या शासन के निर्णय-निर्देश मान कर व्यवस्था के प्रति बद्धता स्वीकार कर लेना उचित है या अपने विवेक के प्रति निष्ठा ?

यह बात मैं स्वयं ही कहना चाहता था इसलिये कहा—मेरे विचार से लेखक को अपने विवेक से प्रतिबद्ध होना चाहिये। कोई शासन या व्यवस्था अपने विचार में या अतीत की अपेक्षा, कितने भी प्रगतिशील हों वे अपने समय में स्वीकृत मान्यता और व्यवस्था (स्टेटसको) के समर्थक और रक्षक होंगे। यह इतिहास प्रमाणित है कि विकास की प्रक्रिया में समय आने पर समाज की स्थिति और नयी आवश्यकताओं में अन्तरविरोध और द्वन्द्व उत्पन्न हो जायेंगे। समाज की व्यवस्था या मान्यतायें बोसीदा हो जायेंगी और प्रगति के मार्ग में रुकावट बनने लगेंगी। ऐसे अन्तरविरोधों को सभी लोग तुरन्त नहीं देख लेते। अपने स्वार्थ को ही आदर्श और न्याय मानने वाले उन अन्तरविरोधों को देखना ही नहीं चाहते परन्तु समाज के भावी विकास और कल्याण के लिये परिवर्तन का मार्ग सदा खुला रहना चाहिये। मेरे विचार में प्रगतिशील लेखक की यही प्रतिबद्धता है।

विकास की इस प्रवृत्ति के कारण प्रबुद्ध विचारकों, विकास की स्फूर्ति से अनुप्राणित कलाकारों और लेखकों को सदा ही सामयिक शासनों और राजशक्तियों का कोपभाजन बनना पड़ा है। सुक्रान्त, चारवाक और कई वैज्ञानिक और सन्त इसके ऐतिहासिक उदाहरण हैं। कुछ प्रसंगों में आज भी ऐसा हो रहा है शायद सदा होता रहेगा क्योंकि प्रगति का मार्ग ही द्वन्द्व और संघर्ष का है।

रचना प्रक्रिया में भाषा और शैली के सम्बन्ध में प्रश्न था—रचना में परिमार्जित और आभिजात्य भाषा और शैली को श्रेय दिया जाये या गली-बाज़ार, खेतों-कारखानों के जीवन और बोल-चाल को और देशज

शब्दों और मुहावरों को ?

मेरा अनुभव है कि रचनाकार अपनी विषयवस्तु, विधा, भाषा और शैली का चुनाव अपने परिवेशों, मान्यताओं, प्रयोजन और प्रेरणा से अपने श्रोताओं या पाठकों की महत्त्वाकांक्षाओं और रुचि के विचार से करता है। निर्णायक बात होगी कि लेखक या कवि किस वर्ग या समाज को सम्बोधन करना चाहता है। सभी देशों और समाजों के प्राचीन राजसत्ता और सामन्त युगों के साहित्य में राज्य विस्तार के लिये वीरता-पराक्रम की गाथायें, रमणियों की प्राप्ति के लिये संघर्षों, विरह-वेदना और उत्कट श्रृंगार-भोग के चित्रण या तत्कालीन कल्पना और विश्वास के अनुकूल अध्यात्म चिन्तन और साधना के प्रसंग मिलते हैं क्योंकि उस समय साहित्य रचना केवल सम्पन्न, सुविधा प्राप्त, जीवन की आवश्यकताओं से सन्तुष्ट वर्ग के लिये की जाती थी। उन रचनाओं में विशिष्ट वर्ग की भाषा का ही प्रयोग होता था। अभिव्यक्ति को सरस बनाने के लिये भाषा में क्लिष्ट अलंकार और व्यंजना के चमत्कार उत्पन्न किये जाते थे। इन रचनाओं की विषय-वस्तु, कल्पना, भाषा सब कुछ दरबारी या विशिष्ट वर्ग के लिये होता था। उस समय साहित्य में सामान्य जन या निम्न वर्ग के जीवन के प्रसंग और उनकी बोल-चाल का प्रयोग ग्राम्य-दोष माने जाते थे। ऐसी साहित्यिक मान्यताओं के कारण सीधे थे, सामान्य और निम्न वर्ग को शिक्षा साहित्य-कला के रस के लिये अवसर ही न था। आभिजात्य समाज सामान्य और निम्न वर्ग की याद और चर्चा से ही अरुचि और खिन्नता अनुभव करते थे।

पूंजीवादी युग और समाज में शासन और अर्थ व्यवस्था का निर्देश-नियंत्रण धनी और मध्यम वर्ग के हाथ आने पर साहित्य से रस ले सकने वाले वर्ग का विस्तार हुआ। रचनाकार का परिवेश और श्रोता बदल गये। रचनाकार भी इसी वर्ग का अंश और प्रतिनिधि होने लगा। स्वाभाविक था कि रचनाकार साहित्य का सृजन इस वर्ग की महत्त्वा-

कांक्षाओं, अनुभूतियों और रुचि के अनुकूल करने लगे। इस वर्ग की भी रुचि, सुख-सौन्दर्य की कल्पना उत्पादन के कठिन श्रम और अभाव से घृणा की ओर सामान्य और निम्न साधनहीन वर्गों से दूर रहने की थी, वैसी ही उनकी भाषा। इस युग में साहित्य की विषय-वस्तु, भाषा और शैली का पूर्वापेक्षा विस्तृत परन्तु अपेक्षाकृत सम्पन्न और मध्य वर्ग की अनुभूति, स्वप्न और रुचि के अनुकूल होना स्वाभाविक था।

उस समय उत्पादन के कठिन श्रम से कुचले अभावग्रस्त मजदूरों या ग्रामीणों की अनुभूतियों या स्वप्नों के उद्गार ग्राम्य भाषा के गीतों और ग्राम्य कथाओं या कभी ग्राम्य नृत्य विनोद में प्रकट होते थे जिन्हें शिक्षित शिष्ट नागरिक वर्ग अनकल्चर्ड, ग्राम्य तथा घृणा-उपेक्षा के योग्य समझता था।

आज हमारी मान्यताएं बदल गयी हैं। हम वर्ग भेद रहित, सम-अधिकार और सम-अवसर जनतंत्र समाज को आदर्श मान रहे हैं। आज कठिन श्रम करने वाले अभावग्रस्त वर्ग को समान अधिकारों का आश्वासन दिया जाता है। आज कवि और साहित्यकार इस वर्ग से भी आते हैं। मध्य वर्ग से आये साहित्यकार भी न केवल सामान्य वर्ग की उपेक्षा नहीं कर सकते बल्कि इस वर्ग को सर्वाधिक महत्त्व देने का डंका बजाते हैं इसलिये आज साहित्य में इस वर्ग की समस्याओं, जीवन, स्वप्नों और भाषा की झलक आयेगी ही। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि साहित्य की प्राचीन परिपाटी से जो प्रसंग और प्रयोग ग्राम्य दोष माने जाते थे, आज यथार्थ चित्रण का गुण माने जाने लगे हैं क्योंकि वे आज बहुजन के लिये रोचक हैं। रचनाओं की भाषा में आज क्लिष्टता के चमत्कार के बजाय सरल और सहज की ओर प्रवृत्ति है परन्तु सरल और सहज का अर्थ गलत, फूहड़ प्रयोग या अभिव्यक्ति नहीं है। जैसे जन गण का जीवन स्तर सुधारने की जरूरत है, वैसे ही जन गण की भाषा को सबल और परिष्कृत बनाने की भी।

एक लेखिका ने पूछ लिया—हम राजनैतिक प्रतिबद्धता, वर्ग संघर्ष और साहित्य को जनतांत्रिक बनाने की ही चिन्ता करते रहेंगे ? कुछ गिने-चुने लेखकों के अतिरिक्त अन्य लेखक नारी की परवश, दीन स्थिति, उसे पाप का मूल माने जाने के अन्याय का विरोध नहीं करेंगे ?—लेखिका के स्वर में क्षोभ था ।

लेखिका की बात तीखी थी । उत्तर भी कुछ तीखा हो गया—यह खयाल ठीक नहीं है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी के प्रति अन्याय के विरोध में आवाज़ उठायी ही नहीं गयी । स्वयं भी इस प्रसंग पर निरन्तर लिखता रहा हूँ । अन्य कई लेखकों ने भी ऐसी समस्याओं और प्रश्नों पर न्याय का पक्ष लेकर रूढ़ि समर्थकों का क्रोध पाया है लेकिन ऐसा साहस अधिकांश में पुरुष लेखकों ने ही किया है । स्त्री लेखिकाओं ने बहुत ही कम । अलबत्ता डेढ़-दो बरस से भारत में नयी पीढ़ी की लेखिकाओं ने इस ओर कदम बढ़ाये हैं । समस्याएं केवल लिखने या आवाज उठाने से नहीं सुलझतीं । उनके विरोध या उपाय के लिये साहसी और संगत व्यवहार की जरूरत भी होती है । अशिक्षित अभावग्रस्त वर्ग की नारी इस अन्याय से व्याकुल होने पर इसे नारी का भाग्य समझ कर चुप है । शिक्षित और सुविधा प्राप्त वर्ग की नारी के व्यवहार में भी नारी की परवशता दूर करने के लिये विशेष प्रयत्न नहीं है । वह नारी की परवशता का विरोध अधिकतर फैशन के तौर पर करती है, आचरण और व्यवहार से नहीं । शिक्षित और सुविधा प्राप्त वर्ग की नारी अवसर और अधिकार की सुविधायें जरूर चाहती है परन्तु पुरुषों की कृपा से । वह आत्मनिर्भरता और उत्तरदायित्व से डरती और कतराती है । तेज़ी से बदलती आर्थिक परिस्थितियां नारी को आत्म-निर्भरता का अवसर दे रही हैं परन्तु शिक्षा द्वारा आत्मनिर्भरता की योग्यता पाकर भी सुविधा प्राप्त वर्ग की अधिकांश स्त्रियां आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना नहीं चाहतीं । वह पराश्रय को आभिजात्य और हक़

मानती हैं। यह केवल विडम्बना है कि नारी आत्मनिर्भरता और उत्तर-दायित्व के बिना आत्मनिर्णय का अवसर चाहे। आधुनिक नारी की बहुत बड़ी संख्या केवल जन अपवाद के आतंक से परवश और दबी रहना स्वीकार किये है। स्वतन्त्रता के लिये पहली शर्त है, आत्मनिर्भरता का उत्तरदायित्व और साहस।

उस दिन प्रातः नाश्ते के बाद 'चीनी उद्योग श्रमिक कल्याण समिति' द्वारा बनायी 'चीनी उद्योग श्रमिक बस्तियां' देखने गये। इन बस्तियों में कई स्तर के; दो कमरों, तीन कमरों और चार कमरों के रसोई-गुसलखाने सहित मकान हैं। मकानों के साथ फूल-फुलवाड़ी और सब्जी-तरकारी की क्यारियों के लिये भी कुछ जगह है। श्रमिक अपनी आय और ज़रूरत के अनुसार यह मकान किराये पर ले लेते हैं। निश्चित अवधि में किराये से ज़मीन-मकान का मूल्य चुकता होकर, मकान उनकी सम्पत्ति बन जाते हैं। छोटी-छोटी बस्तियों की छतें विभिन्न रंगों की। मकानों की बनावट भी सब जगह एक-सी उबाने वाली नहीं हैं। सड़क से गुज़रते बस्तियां सुन्दर लग रही थीं। सुरुचि, सुविधा-सन्तोष का आभास। बस्तियों के समीप प्राइमरी स्कूल, डाकखाने और डिस्पेंसरियां भी हैं।

बस्तियों से कुछ आगे सिंचाई के लिये बनायी झील 'लफेम' और उसके समीप एक पुराना भव्य गिरजा है। झील और उसका पड़ोस बहुत रमणीक है।

नन्दलाल को याद आ गया—ढाई-तीन मील आगे 'फ्लिक आं फ्लाक' में कुछ मास पूर्व नया प्राइमरी स्कूल आरम्भ किया गया था। नन्दलाल द्वीप के शिक्षा विभाग में निदेशक और निरीक्षक भी हैं। वे निरीक्षण प्रायः बिना सूचना दिये, अकस्मात् करते हैं।

नन्दलाल ने कहा—उधर 'बोलमा' में मछुओं की बस्ती है। आपको शायद झोंपड़ियां भी देखने का मौका हो जाये।"

दो दिन पूर्व 'बो शां' (सुन्दरबाग) से सागर तट की सड़क पर

'आन्स कुना, पेति साबल' (महीन रेती), ग्रां साबल (मोटी रेती) 'डेविल्स पांइंट' (देओं का घाट), 'बोआ दे आमुरेत' (प्रीत कुन्ज), 'पेविलियों द ग्रां पोर' (डच दरबार के खण्डहर) के बहुत रमणीक स्थान हैं। सागर तट की सड़क पर 'माहे बर्ग' से कुछ पहले एक जगह दो झोपड़ियां देखी थीं। झोपड़ियों के किवाड़ों पर सांकल थी। खूंटे से बंधी एक बछिया। चौकसी के लिये कुत्ता था। झोपड़ीवासी न थे।

फ्लिक आं फ्लाक का स्कूल समुद्र तट पर है। लगभग दो सौ गज़ के अन्तर पर क्षितिज तक नील सागर है। स्कूल और समुद्र के बीच गांव का फुटबाल मैदान। स्कूल के पिछवाड़े लगती बहुत छोटी बस्ती। सड़क से स्कूल तक डेढ़-दो सौ गज कच्चे रास्ते जाना पड़ा। स्कूल के लिये अलग मकान नहीं बन पाया है। बच्चे अभी गांव के सोशल वेल फेयर हाल (समाज कल्याण भवन) में पढ़ते हैं। द्वीप के छोटे-बड़े सभी गांवों में 'समाज कल्याण भवन' हैं।

हम जल्दी ही पहुँच गये थे। स्कूल के दरवाज़े के साथ बच्चों के नाश्ते के लिये मीठी पाव रोटी या बड़ा थैला और दूध की बाल्टी रखी हुई थी। समाज कल्याण भवन में एक बड़ा कमरा है। बड़े कमरे की बगल में एक तंग कमरा, बड़े कमरे की चौड़ाई तक लम्बा। बड़े कमरे के बीचोंबीच, कमरे की लम्बाई में समानान्तर बेंचें लगी हुई थीं। कमरे की दायें-बायें दीवारों के समानान्तर भी बेंचें लगी थीं। तीनों तरफ बेंचों के सामने एक-एक कुर्सी और छोटी मेज़ अध्यापक के लिये। एक कमरे में तीन कक्षाओं की पढ़ाई। द्वीप के किसी भी स्कूल में, हिन्दी प्रचारिणी सभा के स्कूल में भी विद्यार्थियों को फर्श पर बिछी चटाई या टाट-पट्टी पर बैठ कर पढ़ते नहीं देखा। बता चुका हूँ, यहां कथा मण्डप में भी दरी पर पाल्थी से बैठने का रिवाज़ नहीं है, सब जगह कुर्सी-बेंच ही देखे, रामकृष्ण सेवा मिशन के अतिरिक्त।

मुख्याध्यापिका क्लर्ड-कैथोलिक युवती थी, फ्राक पहने। उसने कमरे

में बेंचों की व्यवस्था के लिये मजबूरी प्रकट की—इतनी ही जगह में तीन कक्षाएं—तीसरी, चौथी, पांचवीं। साथ के कमरे में पहली-दूसरी कक्षाएं, एक दूसरे की ओर पीठ करके। जैसे हो सके, चलाते हैं।

स्कूल में पांच अध्यापिकाएं थीं। उनमें तीन भारतीय, दो साड़ी पहने एक कमीज़-पतलून में। दो कैथोलिक में, एक फ्राक में थी दूसरी ब्लाउज-स्कर्ट पहने। इस स्कूल में बच्चे लगभग सभी भारतीय या हिन्दू थे। सभी हिन्दी पढ़ रहे थे। दो स्कूलों में व्यवसाय या नौकरी पाने में सुविधा की आशा से चीनी बालकों के भी हिन्दी पढ़ने और एक चीनी बच्चे के हिन्दी कक्षा में प्रथम आने की बात सुनी थी। परन्तु भारत से गये मुस्लिम अपने बच्चों को हिन्दी नहीं पढ़ाना चाहते।

अध्यापिकाओं ने अखबारों में चित्र और टेलीविज़न पर चर्चा से मुझे और प्रकाश जी को पहचान लिया। मिलने के अवसर से प्रसन्न थीं।

नन्दलाल स्कूल के रजिस्टर पर नज़र डाल रहे थे। मुख्याध्यापिका कुछ कह रही थीं फ्रांसीसी में, स्वर शिकायत का था। मेरी ओर नज़र गयी तो अंग्रेज़ी में बात करने लगी, "सर, देख रहे हैं, हम इस तंग जगह में, इतने शोर-शराबे में कैसे पढ़ा रहे हैं लेकिन सण्डास-गुसलखाने के लिये हम क्या करें ? मैं तीन बार लिख कर शिकायतें भेज चुकी हूँ। अस्सी बच्चे हैं, उनके हाथ-मुंह धोने के लिये केवल एक वाशबेसिन और केवल एक सण्डास।"

नन्दलाल ने जेब से नोटबुक निकाली, उसमें कुछ लिखते हुए आश्वासन दिया—"आपकी परेशानी के लिये बहुत खेद है। विश्वास रखिये आज ही इसके लिये लिखूंगा।"

खयाल आ रहा था, हमारे गांवों के प्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों को स्कूलों में हाथ-मुंह धोने की व्यवस्था और सण्डास की जरूरत महसूस ही नहीं होती। हमारी संस्कृति का मूलमंत्र है, आवश्यकताओं को कम करना। मौरिशसी भारतीय वंशजों ने खेत, बाग, बगीचों, सड़कों-गलियों

को सराडास समझ लेना छोड़ दिया है परन्तु अपनी आदि संस्कृति की रक्षा और विकास के लिये अपने आदि स्रोत भारत की ओर देखना नहीं छोड़ा।

मुख्याध्यापिका को आश्वासन देकर नन्दलाल ने पूछा—"कोई ऐसा विद्यार्थी बताइये जिसका परिवार झोपड़ी में रहता हो। मेहमान ऐसे परिवारों की स्थिति का अनुमान चाहते हैं।"

"है, एक ऐसी झोपड़ी समीप पचास मीटर पर ही है। वे लोग रहते हैं फूस की छत के नीचे लेकिन हैं अच्छे खाते-पीते। सबसे गरीब परिवार की झोपड़ी यहां से तीन सौ मीटर दूर है। उस लड़के को आपके साथ कर दूं।"

अध्यापिका के बुलवाने पर छः-सात बरस का सांवला दुबला-सा बालक दूसरे कमरे से आया। पुरानी नीली निकर, कुछ छीजी हुई खाकी कमीज़। लेकिन बदन दुरुस्त।

बालक को गाड़ी में साथ ले लिया। फुटबाल के मैदान से आगे समुद्र तट के साथ अढ़ाई सौ मीटर गये। बालक के बताने से बायें कच्चे रास्ते पर घूम गये। तीन-चार घर की बस्ती थी। सामने मकान पर नालीदार टीन की छत। मकान के बहुत समीप घुटने भर ऊंची, एक ईंट की दीवार से घिरा सिन्दूर पुता एक ऊंचा पत्थर, लाल-श्वेत झंडियां। शायद महाबीर पूजा का स्थान। आठ हाथ के अन्तर पर गोबर-मिट्टी लिपी दीवारों पर फूस की गठी हुई छत की झोपड़ी। इस झोपड़ी की पीठ दीवार कच्चे रास्ते की ओर।

गाड़ी रास्ते पर छोड़ कर बालक के साथ झोपड़ी के द्वार की ओर गये। झोपड़ी के दरवाज़े के सामने टोंटी लगा नल। बालक झोपड़ी के भीतर चला गया। कुछ पल में झोपड़ी के द्वार में एक स्त्री दिखायी दी। स्त्री सिर पर धोती का आंचल खींचे, गर्दन झुकाये थी। आयु से युवती। युवती की छपी हुई धोती पुरानी छीजी हुई परन्तु मैली-फटी हुई न थी।

नन्दलाल ने बात क्रिओल में शुरू की और भोजपुरी बोलने लगे—''भारत से मेहमान आये हैं। बहुत माने-जाने बुजुर्ग हैं। माता जी भी साथ हैं। तुम्हें परेशानी न हो तो इस गांव के घरों का रहन-सहन देखना चाहते हैं।''

युवती झिझकी, बालक की ओर संकेत किया—''इसके पिता घर पर नहीं हैं।''

''लड़के के पिता कहां गये हैं, क्या करते हैं?''

हम लोग मछुआ हैं। इस मौसम में मच्छी बहुत कम है। शहर रोज़गार दफ्तर में काम की तलाश में गये हैं।''

''हम तुम्हारे भाई, ये तुम्हारे बाप-दादा की तरह, माता जी भी साथ हैं।'' नन्दलाल ने प्रकाश जी की ओर संकेत से आश्वासन दिया।

''आ जाइये'' युवती ने भीतर होकर राह दी।

झोपड़ी तंग थी, दस-ग्यारह फुट लम्बी उतनी ही चौड़ी। एक दीवार के साथ लोहे का पलंग। पलंग के नीचे धकेली हुई छोटी खाट। पलंग पर गुलाबी फूलदार पलंगपोश। झोपड़ी की पीठ दीवार के साथ दो आलमारियां, कांच लगे पल्ले की। दूसरे सामान रखने के लिये दीवार पर शल्फ की तरह तख्ते। आलमारियों में चीनी के तश्तरी-प्याले, प्लेटें, कांच के गिलास। तख्तों पर बर्तनों के साथ दो खाली बोतलें, एक मार्टिनी ब्राण्डी की दूसरी रम की। झोपड़ी में दायें भाग में पलंग से दूसरी ओर दीवार के साथ चौकोर मेज़। मेज़ पर फूलदार हरे प्लास्टिक का मेज़-पोश। मेज़ पर शीशे का किरासिन तेल का चिमनीदार लैम्प, चीनी के कुछ और बर्तन। पलंग के साथ दीवार पर और दीवारों पर खाली जगह में तीन कैलेण्डर। एक कैलेण्डर में राधा को बांह में लिये वंशी बजाते हुए कृष्ण। दूसरे कैलेण्डर में कोई भारतीय फिल्म अभिनेत्री, तीसरे में समुद्र तट पर खड़ी, केवल अंगिया-कछिया पहने यूरोपियन तरुणी।

युवती ने हमें कुर्सियों पर बैठने के लिये संकेत किया, स्वयं पांव

धरती पर टिकाये पलंग पर बैठ गयी। उतनी तंग जगह में तीन कुर्सियां थीं। एक काठ की बैठक की ढनकती, अनगढ़ बाजूदार भारी कुर्सी, दो लोहे के ऐंठे तार और टीन की बेबाज़ू कुर्सियां। द्वीप में धरती पर सोने या बैठकर खाने का चलन नहीं है। किसान खेत में साथ बांध कर लाया खायेका भी किसी पत्थर या गिरे पेड़ के तने पर बैठ कर खाते हैं। खटिया, कुर्सी-मेज़ गरीब को भी चाहिये।

नन्दलाल की जिज्ञासा पर युवती ने बताया, उसका नाम धनवतिया था, उसका मायका गुडलैण्ड में था। कुछ-कुछ हिन्दी पढ़ सकती थी। बचपन में रात्रि पाठशाला में हिन्दी पढ़ी थी। बच्चे तीन थे। हमारे मार्गदर्शक बालक का नाम विद्यानन्द था। बालक के पिता का नाम देवब्रत चतुर्गुन।

नन्दलाल ने अनुमान प्रकट किया—ये नाम आर्यसमाजी प्रभाव से हैं। चतुर्गुन पारिवारिक नाम। शायद भारत से आये देवब्रत के दादा-परदादा का नाम चतुर्गुण या शत्रुघ्न रहा होगा।

ब्राण्डी-रम की बोतल की ओर संकेत कर पूछा—"देवब्रत पी कर उपद्रव तो नहीं करता।"

धनवतिया ने हाथ से इनकार किया—"नहीं, ऐसा नहीं है। कभी थोड़ा पीता है। मेहमानदारी में करना ही पड़ता है।"

धनवतिया की उम्र तीस के आस-पास होगी। मंझला इकहरा बदन, चेहरा गोल, दबा माथा, रंग खुला हुआ सांवला, आंखें मैथिल या बंगाली आंचल की। व्यवहार मजदूरी करनेवाली युवती का नहीं, ग्रामीण भले घर की बहू का, आँखें झुकाये। प्रश्न पर एक बार नज़र उठाकर गर्दन झुकाये संक्षिप्त उत्तर देती थी। हमें मछली पकड़ने के लिये बांस की कमची के स्वयं बनाये जाल भी दिखाये। हमारे आने से पहले वही काम कर रही थी। बताया कानूनन जाल के छेद इससे तंग नहीं होने चाहिये। इससे छोटी मछली पकड़ना मना है।

झोपड़ी से लौट रहे थे, समीप टीन से छाये मकान के बरामदे में दो जवान लड़कियां कौतूहल से हमारी ओर देख रही थीं। एक लड़की की मांग में भरपूर सिन्दूर, नवेली बहू।

नन्दलाल चाहते थे उस मकान के परिवार की स्थिति का भी अनुमान हो जाये। लड़कियों को सम्बोधन किया—"ये मेहमान भारत से द्वीप देखने आये हैं। उस मकान को देखा है। तुम्हें परेशानी न हो तो यहाँ भी एक नज़र डाल लें।"

बहू की ननद बोली—"घर के बड़े लोग नहीं हैं। हम क्या कह सकते हैं?"

समुद्री हवा से बरायदे में खुली खिड़की का पर्दा उड़कर खिड़की के पल्ले पर अटक गया था। भीतर सब दिखाई दे रहा था—मकान की बाहरी दीवारों की तरह भीतर भी कुछ ही दिन पूर्व पोती गयी चटक सफेदी। साधारण मेज़-कुर्सी, आलमारियों में सामान, देवव्रत के यहां से कुछ बेहतर सुविधा और कायदे से।

विद्यानन्द से कहा—"चलो तुम्हें स्कूल पहुँचा दें।"

"मैं चला जाऊंगा।" वह उछलता-फुदकता समुद्र तट की ओर भाग गया।

सन्तोष हुआ, द्वीप के गरीब परिवारों की स्थिति और ढंग का अनुमान हो गया। गरीबों में भी बहू को सलीका है। साड़ी-धोती पर पेटीकोट, कपड़े चिथड़ा मैले नहीं।

प्रकाश जी ने बताया—"धोती ऐसी मैली नहीं थी परन्तु थी फटी हुई। वह उसे संभाल से छिपाये थी। ऐसे मामले में नारी की नज़र चूकती नहीं। धोती फटी सही परन्तु उसका साफ होना और फटे कपड़े को आगन्तुक से छिपाये रखने की चिन्ता रहन-सहन के स्तर का संकेत है। गरीबी है परन्तु आत्म-सम्मान और सुरुचि को कुचल देने वाली नहीं।

'गांधी संस्थान' में आधुनिक भारतीय साहित्य पर चर्चा

मौरिशस की उदीयमान यूनिवर्सिटी में भारतीय भाषाओं, साहित्य और संस्कृति के अध्ययन और शोध कार्य के लिये भारतीय सरकार के योगदान से 'गांधी इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की गयी है। इन्स्टीट्यूट के निदेशक डाक्टर हजारीसिंह हैं। उन्होंने पहली मुलाकात में ही निश्चय कर लिया था, फरवरी प्रथम सप्ताह के अन्त में इन्स्टीट्यूट के तत्त्वावधान में मुझे आधुनिक भारतीय साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियों का परिचय देना होगा।

इस कार्यक्रम की सूचना स्थानीय पत्रों और रेडियो द्वारा प्रसारित हो चुकी थी। कुछ वर्ष से डाक्टर रामप्रकाश द्वीप में हिन्दी भाषा और साहित्य के शिक्षण में परामर्श और निर्देशन से सहायता कर रहे हैं। उनके गहरे अध्ययन और कर्मठता के कारण उनका आदर है। रामप्रकाश द्वीप में भारतीय लेखकों के आगमन से पूरा लाभ उठाने के लिये सतर्क रहते हैं। उनके अनुरोध से 'टीचर्स ट्रेनिंग कालिज' में और अन्य अव.रों पर भारतीय साहित्य के विषय में कुछ वार्त्ता और प्रश्नोत्तर हो चुके थे। उस से वे उत्साहित थे। उन अवसरों पर रामप्रकाश के सुझाव पर हिन्दी से अपरिचित श्रोताओं की सुविधा के विचार से बातचीत अंग्रेज़ी में हुई थी। उनकी राय थी इन्स्टीट्यूट की ओर से 'क्वीन एलिज़ाबेथ कॉलिज' हॉल में आयोजित सभा में भी अंग्रेज़ी में ही बोलूं। इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर का आग्रह था—भारतीय साहित्य की प्रवृत्तियों के बारे में बातचीत का उचित माध्यम भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होना चाहिये।

इस सभा में त्रिओले, प्लेन मायां, प्लेन द पपाया, गुडलैंड्स और बो शां की भांति भीड़-भब्बड़ और तमाशाइयों का जमघट न था। एलिज़ाबेथ

कॉलिज का हाल, कॉलिज हाल के नाते खूब बड़ा है। वेदी के सामने लगभग चार सौ कुर्सियां। श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी तो अगल-बगल और पीछे कुर्सियां रखी जाने लगीं, जगह न रही तो कुछ लोग बाहर खिड़कियों के समीप खड़े हो गये थे। माइक से आवाज़ बाहर भी जा सकती थी। श्रोता अधिकांश में अध्यापक, पत्रकार, लेखक। भारत के उच्चायुक्त महामहिम कृष्णदयाल और पाकिस्तान के उच्चायुक्त महामहिम अनवर खां भी आये। मेरे कथन का संक्षेप है :

भारतीय और हिन्दी साहित्य की वर्तमान प्रवृत्तियों और समस्याओं के सम्बन्ध में आये दिन अनेक आलोचनात्मक और शोध पुस्तकें भारत में और कुछ निबन्ध विदेशों में भी प्रकाशित होते रहते हैं। उस व्यापक और विस्तृत प्रसंग पर कुछ मिनिट में बहुत संक्षिप्त रूप-रेखा या संकेत ही सम्भव हैं। साहित्य की परिभाषाएं अनेक हो सकती हैं। बहुत सरल और व्यावहारिक परिभाषा है, साहित्य देश-काल के अनुसार समाज की अवस्था, मान्यताओं, भावनाओं, समस्याओं और महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब देने वाला दर्पण होता है।

साहित्य के प्रसग में समाज से अभिप्राय समाज के मुखर और निर्णायक वर्ग से होता है। संसार के सभी समाजों का अतीत और वर्तमान साहित्य इस तथ्य का गवाह है। प्राचीन भारतीय साहित्य भी तत्कालीन समाज की मान्यताओं और आदर्शों के प्रतिबिम्ब देने के और उनके समर्थन का यत्न था। सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से वे आदर्श और मान्यताएं, दैवी इच्छा या न्याय द्वारा नियुक्त स्वामी और शासक वर्ग के नियम और आदेश थे, जिन्हें आज संक्षेप में राजसत्ता या सामन्ती सत्ता के दरबारी आदर्श और व्यवस्था कहा जा सकता है। उन मान्यताओं और आदर्शों में पारलौकिक विश्वासों के लक्ष्यों और आध्यात्मिक संतोष का भी बहुत महत्त्व था। पारलौकिक विश्वासों के लक्ष्यों और आध्यात्मिक संतोष की साधना सामान्य जन को जीवन की

आवश्यकता पूर्ति के अवसर और साधनों के अभाव में विश्वास का संतोष दे सकती थी। आवश्यकताओं की पूर्ति से स्वामी वर्ग काव्य, कला, और शास्त्र के विनोद से संतोष पाते थे। सामान्य जन के लिये कर्तव्य के धर्म की पूर्ति और भक्ति से परलोक में स्वर्ग का फल और जन्मान्तर में सुख का विश्वास था। आज वर्तमान भारतीय साहित्य का रूप और तत्त्व बदल चुके हैं।

वर्तमान भारतीय साहित्य की भावना, प्रेरणा, मान्यताओं और आदर्शों के आन्तरिक परिचय के लिये भारतीय साहित्य में आने वाले परिवर्तनों के क्रम पर सरसरी नज़र सहायक हो सकती है। हमारे देश के विचारों और साहित्य में परिवर्तन की जरूरत की चेतना या नवजागरण का आरम्भ गत सदी के अन्तिम चौथाई भाग से हुआ है। इस जागरण में पश्चिम से सम्पर्क का, पश्चिम से कुचले जाने की अनुभूति का और पश्चिम की तुलना में अपने असामर्थ्य और निर्बलता की चेतना का उत्कट प्रभाव था। देश के जागरूक लोगों ने अपनी राष्ट्रीय निर्बलता, गुलामी और गरीबी के कारण, अपने जन समाज में अशिक्षा, आधुनिक ज्ञान में पिछड़ेपन और रूढ़ियों के अन्ध विश्वासों को समझा। गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के साहस के लिये अपनी जातीय और राष्ट्रीय हीन भावना को दूर करना जरूरी था। पुराने अन्ध-विश्वासों और रूढ़ियों से स्वतंत्र होने की प्रेरणा के आन्दोलन शुरू हुए। आन्दोलन का एक साधन होता है, छपी हुई बात या साहित्य। हमारे राष्ट्रीय जागरण की भावना हमारे साहित्य में भी आ गयी।

अंग्रेज़ों ने भारत पर कब्ज़ा करने के साथ ही अपने शासन की जड़ें गहरी जमा सकने के लिये, हमारे देश की प्रजा के दिमाग में यह बैठा देना चाहा कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तानी की अपेक्षा बहुत ऊंची नस्ल का इंसान है, कुदरतन हाकिम और राजा है। यह देश प्राकृतिक रूप से और सदा से कमज़ोर और जाहिल है। यहां के निवासी सदा अकाल, अव्यवस्था

और महामारी में तड़पते रहे हैं। अंग्रेज़ ने उन्हें बेहतर ज़िन्दगी और सभ्यता दी। हिन्दुस्तानियों का कल्याण अंग्रेज़ों के आधीन राजभक्त आज्ञाकारी प्रजा बने रहने में है।

उस युग का जागरूक भारतीय या साहित्यिक अपनी जनता को कहता था—अतीत में हम संसार के गुरु थे। जब दूसरे देश-समाज वन-मानुषों की हालत में थे, हमारा देश बहुत उन्नत था। अज्ञान, भ्रम से फूट में पड़कर हम अपना महत्त्व और सामर्थ्य भूल गये, व्यर्थ रूढ़ियों और जाति-भेद-भाव में फंसकर असमर्थ हो गये। अपनी शक्ति पहचान कर हमें फिर अपनी सामर्थ्य, अधिकार और अवसर पाना है। इस प्रयोजन से हमारे प्राचीन इतिहास को आधुनिक नज़र से संवार कर, कभी-कभी अत्युक्तिपूर्ण ढंग से भी उस समय के साहित्य में दिया जाने लगा। समाज को निर्बल बनाने वाली प्रथाओं—निरक्षरता, बाल विवाह, सती प्रथा, छुआछूत, जात-पांत की कट्टरता को दूर कर समाज में समता और एकता की भावना के लिये प्रेरणा दी जाने लगी। यह साहित्य को देश के समाज की सामयिक आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का प्रयत्न था।

उस समय के भारतीय साहित्य में राजनैतिक स्वतन्त्रता की स्पष्ट ललकार के लिये अवसर न था। स्वतंत्रता की बात केवल मानवीय आदर्शों और कल्पना के रूप में कही जा सकती थी। नवजागरण का आरम्भ हुआ था देश के शिक्षित मध्य वर्ग में। उस समय इस वर्ग की राजनीति थी, विदेशी सरकार को राजभक्ति और वफ़ादारी का आश्वासन देकर शासन में उदार सुधारों, प्रजा को शिक्षा और चिकित्सा की सुविधाओं और भारतीय शिक्षित लोगों के लिये सरकारी नौकरियों में अवसर की भिक्षा की मांग। आर्थिक क्षेत्र में भारतीय व्यवसायों और व्यापार के लिये जीवित रहने के अवसर की मांगें। किसान-मज़दूरों की अवस्था को असह्य न बना देने की मांगें। उस समय का भारतीय या हिन्दी साहित्य दूसरे देशों में स्वतन्त्रता के लिये संघर्षों की चर्चा करता था और व्यंजना

से पिंजरे में बन्द तोते-मैना और बुलबुल की कैद के लिये सहानुभूति से स्वतंत्रता की इच्छा की आहें भरता था। व्यंजना और राष्ट्रीय दमन का विरोध किया जाता था—'हम आह भी भरते हैं तो हो जाते हैं बदनाम, वो क़त्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता।'

जनता को स्वतन्त्रता के योग्य बना सकने के लिये उन्हें कुसंस्कारों को छोड़ने और समाज सुधार की प्रेरणा दी जाती थी। पहले महायुद्ध के अन्त तक आधुनिक शिक्षा ने और युद्ध के अनुभव ने हमारी जनता की आंखें खोलीं। जनता का साहस भी बढ़ा। विदेशी शासन के दमन की शिकायत के रूप में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की अस्पष्ट आवाज़ें उठने लगीं परन्तु तब भी विदेशी शासन का आतंक प्रबल था, इसलिये साहित्य में यह आवाज़ व्यंजना के आवरण में ही उठ सकती थी। इस परिस्थिति ने हमारे साहित्य में लक्ष्य या प्रयोजन को अस्पष्ट (मिस्टिक ढंग) आवरण में और व्यंजना से कहने की छायावादी शैली को प्रोत्साहित किया। साहित्य में छायावाद (मिस्टिसिज्म) का सहारा लिया जाने का एक और जबरदस्त कारण था, साहित्यिकों के राजनीति में दखल से तत्कालीन सरकार की नाराज़गी। साहित्य में यह छायावादी शैली केवल राजनैतिक भावना से ही नहीं पुरानी सामाजिक मान्यताओं और परम्परा की विवशताओं से वैयक्तिक और सामाजिक व्याकुलता की अभिव्यक्ति का भी माध्यम बनने लगी।

साक्षरता और शिक्षा के प्रसार से हमारे साहित्य का पाठक समुदाय बहुत बढ़ चुका था। पाठकों की अच्छी बड़ी संख्या निम्न मध्य वर्ग और अभावग्रस्त वर्गों में भी हो गयी थी और उन वर्गों से कई लेखक भी हमारे साहित्य में आ गये थे। इस परिस्थिति का प्रभाव तत्कालीन साहित्य के तत्त्वों, शैली और भाषा पर पड़े बिना न रहा। भारतीय साहित्य उत्तरोत्तर सामान्य जन के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के यथार्थ और ठोस धरातल पर जमने लगा। इस तरह की रचनाओं के लिये आभिजात्य वर्ग

की काल्पनिक उड़ानों, बहुत यत्न से अलंकृत बनावटी भाषा और छाया-वादी शैली की अपेक्षा, सामान्य जन के जीवन के चित्रण और उनकी समस्याओं के लिये स्पष्ट, यथार्थ का विश्वास देने वाली शैली और रोज़-मर्रा की सरल परन्तु सबल भाषा ही अनुकूल थी। यह भारतीय साहित्य में यथार्थवादी युग का आरम्भ था। परिणाम में हमारे साहित्य में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की मांग ने स्पष्ट रूप ले लिया। उसके साथ ही सामान्य और शोषित वर्गों के आर्थिक शोषण-दमन के विरोध की आवाज भी उठने लगी। इस आवाज़ ने हमारे साहित्य में वर्ग चेतना का तत्त्व शामिल कर दिया। हमारे उस समय के साहित्य में राष्ट्रीय मुक्ति की प्रेरणा के साथ वर्ग संघर्ष की अभिव्यक्ति और प्रेरणा भी आ गयी। भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष में भारतीय साहित्य ने बहुत बड़ी प्रेरक शक्ति का काम किया है।

विदेशी गुलामी और उसके साथ ही सदियों तक साम्प्रदायिक अन्ध-विश्वासों की जकड़ ने हमारे समाज में कुछ संस्कारों को बहुत गहरा जमा दिया था। विदेशी शासन हमारे अन्धविश्वासों, वहमों और कुसंस्कारों से हमारी जनता में फूट डाल कर हमारी आज़ादी की भावना और संघर्ष को तितर-बितर कर सकने के प्रयोजन से हमारे उन अन्ध-विश्वासों वहमों और कुसंस्कारों को सदा बढ़ावा देने की कोशिश करता रहता था। हमारी बदकिस्मती से विदेशी शासन अपनी इस कूटनीति में सफल भी होता रहा। हमारी जनता के वे अंधविश्वास और संस्कार हमारे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान हमारी बहुत बड़ी कमजोरी बने रहे। भारत ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता पायी परन्तु उस संघर्ष में समूचा न रह सका, दो टुकड़े हो गया। उस टूटने या बंटवारे की यातना से और परिणाम से हमारी जनता के सामूहिक और वैयक्तिक जीवन के कई और पहलू और समस्याएं भी उजागर हो गईं। उन सब अनुभवों का भी हमारे वर्तमान साहित्य की प्रवृत्तियों पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

विदेशी गुलामी या राष्ट्रीय पराधीनता के समय हमारे राष्ट्र या जनता को आत्मनिर्णय का अवसर न होने से अपने जीवन को बेहतर बना सकने की स्वतन्त्रता के सभी रास्ते बन्द थे। स्वतंत्रता का प्रयोजन या वास्तविक स्वतंत्रता वैयक्तिक और सामूहिक जीवन को बेहतर बना सकने के अवसर और साधन ही होते हैं। राष्ट्र द्वारा आत्म-निर्णय के अधिकार और अवसर के रूप में स्वतंत्रता पा लेने पर हमारी जनता के सामने वास्तविक स्वतंत्रता का लक्ष्य है। मनुष्य समाज की वास्तविक स्वतंत्रता का अर्थ है, जनगण को जीवन रक्षा और विकास के पूरे अवसर और साधन मिल सकना, बेरोज़गारी और उसके आतंक से मुक्ति। अपनी मेहनत का पूरा फल पा सकने की स्वतन्त्रता। अच्छे स्वास्थ्य और चिकित्सा के अवसर और साधन, यथा सामर्थ्य और यथेष्ट शिक्षा के अवसर और साधन। नर-नारी को मानसिक और शारीरिक प्रवृत्तियों प्रेम, विनोद, विश्राम के अवसर और साधनों की स्वतंत्रता। जनता को ऐसी सब स्वतंत्रता दे सकने वाली राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का लक्ष्य ऐसा समाज है जिसमें अवसरों और साधनों की दृष्टि से मालिक और सेवक के वर्ग भेद न हों, अवसरों और साधनों की समता हो, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मेहनत का फल पाने का पूरा हक और मौका हो, दूसरे की मेहनत का फल हड़प सकने का अवसर और साधन किसी को न हो। जिस समाज की योजनाएं, नैतिकता, न्याय, शिक्षा लोकायत (सेक्यूलर) दृष्टिकोण और लक्ष्यों से हो, जिस समाज में सम्पूर्ण जनता को विचार, अभिव्यक्ति के माध्यमों और अपनी मान्यताओं के अनुसार आचरण-व्यवहार की पूरी स्वतंत्रता हो परन्तु दूसरों की स्वतंत्रता में रुकावट बनने का अवसर न हो। हम अपने इस राष्ट्रीय लक्ष्य को एक वाक्य में कह सकते हैं—जनतांत्रिक साधनों की दृष्टि से आर्थिक वर्गभेद हीन, लोकायत व्यवस्था का सम-स्तर समाज।

वर्तमान भारतीय साहित्य, व्यक्ति और समाज के जीवन के सभी

पहलुओं और आयामों में हमारी जनता की ऐसी भावनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है। हमारे वर्तमान साहित्य में उस लक्ष्य को न पा सकने से असंतोष की व्याकुलता है और उसे पा सकने के अदम्य संघर्ष की हुङ्कार भी है। मुझे यह कह सकने में संकोच नहीं कि हमारे वर्तमान साहित्य की मुख्य ध्वनियां अपनी स्थिति से असंतोष, व्याकुलता और अपनी कठिनाइयों को दूर करने के संघर्ष की ललकारें हैं।

कुछ लोगों को विस्मय हो सकता है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के पच्चीस वर्ष बाद भी भारतीय साहित्य में असंतुष्ट जीवन की व्याकुलता और जीवन के अवसरों के लिये ललकार की ही प्रधानता है। क्या भारत ने पच्चीस बरस में कुछ भी नहीं किया ? हमने बहुत कुछ किया है। बहुत से क्षेत्रों में हमने उत्पादन को बहुत अधिक बढ़ा लिया है। अनेक विषमताओं को कानूनन अपराध करार दे दिया है। सर्वसाधारण जनता का जीवन-स्तर पूर्वापेक्षा । जरूर कुछ बेहतर है। कुछ क्षेत्रों में हम पूर्णतः आत्मनिर्भर हो सके हैं और कुछ क्षेत्रों में अस्सी प्रतिशत आत्मनिर्भर हो गये हैं। आत्मरक्षा के सामर्थ्य की दृष्टि से हमें एक बलवान सैनिक शक्ति माना जाने लगा है जैसा कि नौ-दस बरस पूर्व तक नहीं माना जाता था परन्तु भारत का आदर्श महान सैनिक शक्ति बन जाना ही नहीं है। वह हमारे लिये आत्मरक्षा की मजबूरी है। हमारी जनता की भावना और महत्त्वाकांक्षा लोकायत दृष्टि से सम अवसर-साधन समाज की है जिसमें मानवी जीवन के सुधार और विकास का अबाध अवसर हो। शायद आप सोच रहे हों, मैं वर्तमान भारतीय साहित्य और कला की प्रवृत्तियों के बजाय भारतीय जनता की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक भावनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की चर्चा कर रहा हूँ। साहित्य की प्रवृत्तियां साहित्य को नहीं खोजतीं, जीवन के अवसर को खोजती हैं। साहित्य की प्रवृत्ति का सही परिचय उस की दिशा और लक्ष्य का परिचय है।

सवाल हो सकता है कि भारतीय साहित्यिक अपनी रचनाओं में केवल जनता के अभाव और कठिनाइयों को ही दिखाना चाहता है, उन समस्याओं के हल या समाधान बताने की कोशिश क्यों नहीं करता ? हम साहित्य को समाज का दर्पण मानते हैं। हम-आप जब आइने के जरिये अपने चेहरे या लिबास में कोई ऐब देखते हैं तो कुद्रतन उसे दूर करने का यत्न हो जाता है। अपनी रचना में सामाजिक और वैयक्तिक समस्याओं के लिखने का प्रयोजन ही होता है, उन समस्याओं के समाधान के लिये समाज को सचेत करना और प्रेरणा देना। सामाजिक समस्याएं लेखक के वैयक्तिक प्रयत्न से नहीं, सामूहिक प्रयत्न से ही हल हो सकती हैं, लेखक केवल चेतना और प्रेरणा दे सकता है।

वर्तमान भारतीय साहित्य की रुझानों का परिचय, संक्षेप के लिये मजबूरी से जिन शब्दों में जिस ढंग से दिया है, शायद यह समझ लिया जायेगा कि वर्तमान भारतीय साहित्य, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक असन्तोष प्रकट करने का और ऐसी मांगों का बहुत बड़ा आन्दोलन या मोर्चा ही है। उसमें कला, रस या सौन्दर्य की कोई चिन्ता या साधना नहीं है। ऐसा खयाल सही नहीं होगा। साहित्य का गुण और प्रयोजन मनुष्य समाज की मधुर और कटु अनुभूतियों, भावनाओं और महत्त्वा-कांक्षाओं की सरस कलात्मक अभिव्यक्ति देना है। लेखक का प्रयत्न यदि पाठक में अपने कथ्य के प्रति रागात्मक और रसात्मक अनुभूति जगा देने में असमर्थ रहे तो वह रिपोर्ट या लेखा मात्र होगा, साहित्य नहीं। इस कसौटी पर वर्तमान भारतीय साहित्य पिछड़ा नहीं है। उसने बहुत उन्नति और विकास किया है।

शायद पूछा जाये हिन्दी में आज कौन कवि या लेखक तुलसी, रवि ठाकुर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बंकिम, शरत या प्रेमचन्द के स्तर पर पहुँचता है। निःसंकोच कहा जा सकता है, आज के भारतीय कहानी-उपन्यास कला और विषय-वस्तु की दृष्टि से बंकिम, रवीन्द्र, शरत और

प्रेमचन्द से बहुत आगे बढ़ गया है। किसी भी देश-काल का साहित्य एक-दो व्यक्तियों से नहीं परखा जा सकता। आज अंग्रेज़ी में शेक्सपियर के बराबर या उस स्तर का कोई साहित्यिक नहीं है परन्तु वर्तमान अंग्रेज़ी साहित्य शेक्सपियर के समय से बहुत आगे और अधिक प्राणवान है। वही बात भारतीय साहित्य के लिये है। परिमाण में भी हमारे साहित्यिक विकास की गति पूर्वापेक्षा बहुत अधिक है। बीस वर्ष पहले तक हमारे यहां किसी उपन्यास की दो हजार प्रतियां ही प्रकाशित होती थीं। उसके बाद शायद दो या तीन संस्करण हो सकते थे। अब यह संख्या बीस गुणा है। प्रकाशनों की संख्या पूर्वापेक्षा पच्चीस-तीस गुना अधिक हो चुकी है। भारतीय साहित्य के बारे में मेरी बात को अपने मुँह मियां मिट्ठू बनना नहीं समझा जाना चाहिये। आज बहुत सी विदेशी भाषायें हमारी आधुनिक रचनाओं का अनुवाद उत्सुकता से और उत्तरोत्तर अधिक कर रही हैं।

सांस के कष्ट के कारण सभा-गोष्ठी में अपनी बात प्रायः बीस-पच्चीस मिनिट में समाप्त कर देता हूँ। उस समय श्रोताओं की अपलक उत्सुकता से उत्साहित होकर पैंतालीस मिनट बोल गया। सांस फूलने लगा। प्रसंग समाप्ति के लिये कहा:—

इस समय इतना ही कह सकूंगा। मुझे आशंका है कि बहुत कुछ कह गया हूँ परन्तु शायद श्रोताओं को कुछ और ही जिज्ञासाएं रही हों। यदि कुछ प्रश्न हैं तो सामर्थ्यभर उत्तर देने का यत्न कर सकता हूँ।

इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर हजारीसिंह ने और सभाध्यक्ष बखोरी ने आरम्भ में ही आश्वासन दे दिया था कि अन्त में कुछ प्रश्नों का उत्तर देने का यत्न करूंगा।

मेरे कथन पर सबसे पहले शास्त्रीय (पिडेन्टिक) प्रश्न या आपत्ति हुई—आपने साहित्य की परिभाषा में उसे समाज का दर्पण कहा है। यह साहित्य का लक्षण माना जायेगा, परिभाषा नहीं।

स्वीकार किया—शायद अध्यापक या परीक्षा की तैयारी करने वाले विद्यार्थी की नज़र से आपकी आपत्ति सही हो सकती है परन्तु व्यावहारिक प्रयोजन के लिये परिभाषा का पर्याय या समानार्थक होगा—'डेफीनीशन' या पहचान । शायद आप मानेंगे कि लक्षण का समानार्थक भी डेफीनीशन या पहचान ही होगा । इस स्थिति में मेरी बात में उलझन या भटकाव का कोई कारण नहीं जान पड़ता।

दूसरा प्रश्न था—साहित्य में सेक्स (नर-नारी सम्बन्ध) समस्या और उसके चित्रण का क्या स्थान और उपयोग है और ऐसी समस्याओं और ऐसे पहलू के चित्रणों को साहित्य में कितना महत्त्व और स्थान दिया जाना चाहिये ?

साहित्य को समाज का दर्पण या लेखा-जोखा माना जाय तो उसमें सेक्स का वही अनुपात या स्थान होगा जो स्थान सेक्स का व्यक्ति और समाज के जीवन में है । सेक्स समाज का उद्गम और उसके क्रम का सहारा है । समाज सेक्स के बिना नहीं चल सकता तो साहित्य सेक्स के बिना कैसे चलेगा ? साहित्य में सेक्स के अनुपात और तरीके का प्रश्न ज़रूर महत्त्वपूर्ण है । जैसे जीवन में सेक्स की परिणति के लिये बहुत कुछ आवश्यक होता है वैसे ही साहित्य में भी सेक्स, परिस्थितियों के अनुकूल प्रसंग से देना उचित है । सेक्स का संतोष सेक्स के सुरुचि और सौन्दर्य से सम्पन्न होने से ही होता है । साहित्य में भी सेक्स उसी तरह सावधानी, सुरुचि और कलात्मक संयम से सौन्दर्य की तृप्ति और संतोष दे सकता है जैसे वह समाज में और व्यक्ति के यथार्थ जीवन में देता है । सेक्स आदर और आकर्षण की चरम सीमा होता है और सेक्स को अति घृणा और अपमान की अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनाया जा सकता है। सेक्स का प्रयोग और प्रसंग, सेक्स के बारे में समाज और व्यक्ति के सांस्कृतिक स्तर, उनकी कलात्मक सूक्ष्म समझ और सामर्थ्य के अनुकूल होगा । सेक्स समाज और साहित्य दोनों के लिये अनिवार्य है परन्तु सेक्स प्रसंग

से संतोष के लिये सुरुचि और सावधानी भी अनिवार्य है वर्ना सेक्स अरुचि का कारण और वीभत्स बन जायगा।

तीसरा प्रश्न—वर्तमान भारतीय और हिन्दी साहित्य में निम्न स्तर की उच्छृङ्खल सेक्स कहानियों-उपन्यासों की बाढ़ आ गयी है, वह किस सामाजिक चेतना या प्रगति की प्रेरणा है ? उसकी रोक-थाम आवश्यक हैं या नहीं ?'

यह बात सही है कि अन्य देशों की भाषाओं की तरह भारतीय भाषाओं और हिन्दी में भी सस्ते निम्न स्तर के सेक्स साहित्य से मनोरंजन का बाज़ार बढ़ रहा है। विकसित देशों की भाषाओं में, हमारी दृष्टि से बहुत अधिक उच्छृङ्खल साहित्य की बाढ़ हमारे यहां से कहीं अधिक है। यहां तक कि भारतीय सरकार को और मौरिशस की सरकार को भी, विकसित देशों के ऐसे साहित्य को अपने देश में आने पर रोक-थाम लगानी पड़ी है परन्तु ऐसी रोक-थाम ऐसे साहित्य को रोक नहीं सकेगी। ऐसे सेक्स साहित्य की मांग होने पर वह हमारे देशों में ही तैयार होने लगा है और तैयार होता जायेगा। खुले बाज़ार में उसकी बिक्री रोकी जायगी तो ऐसा साहित्य चोरी से बिकेगा। कुछ समाजवादी देशों में ऐसी ही स्थिति है। इस प्रश्न को दो भागों में बांट सकते हैं—पहला सवाल—ऐसे सेक्स साहित्य को उच्छृङ्खल या आपत्तिजनक माना जाये या नहीं। दूसरा सवाल, ऐसे साहित्य की मांग के क्या कारण हैं ?

किसी भी व्यवहार या साहित्य को देश-काल की मान्यताओं और संस्कारों के अनुसार ही उच्छृङ्खल या आपत्तिजनक कहा जायेगा। पश्चिमी देशों और समाजों के बैले और बाल-नाच और भारत के भारत-नाट्यम और कत्थक-नृत्यों का सभ्य संसार में आदर है, वे ऊंची कला माने जाते हैं, जिन्हें सीखने के लिये लोग विदेशों से भी आते हैं। नारी को पर्दे में रखने की नैतिकता में आस्था रखने वाला समाज ऐसी कला को उच्छृङ्खलता और आपत्तिजनक मानेगा। इस तरह के और भी उदाहरण

दिये जा सकते हैं, पति-पत्नी का हाट-बाज़ार में बांह में बांह डाले चलना या परस्पर प्रेम-आदर प्रकट करने के बारे में भिन्न मान्यतायें हो सकती हैं। एक समाज में अभ्यागत नारी के प्रति आदर प्रकट करने के लिये उसे गाल या माथे पर चूमा जाता है। दूसरे समाज में नारी अपना चेहरा छिपाये रहती है। यदि सेक्स सम्बन्धी मान्यतायें समाज की परिस्थितियों और जरूरतों के अनुकूल होती हैं या बदलती हैं तो जिस सेक्स साहित्य को हम उच्छृङ्खल और आपत्तिजनक कह रहे हैं वह दूसरी नजर से उच्छृङ्खल और आपत्तिजनक न मालूम हो, शायद उसकी जरूरत भी मान ली जाये।

दूसरा सवाल है कि सेक्स साहित्य की मांग बढ़ क्यों रही है? एक कारण है, सेक्स सम्बन्धी और उनकी तृप्ति की परिस्थितियों में परिवर्तन। चालीस-पचास साल पहले तक नारी का मुख्य काम था, सेक्स सम्बन्धों की स्थिरता की परिस्थिति बनाये रखना और उस सम्बन्ध के परिणाम सन्तानों को संभालना। अब स्त्रियों की बड़ी संख्या आर्थिक आत्मनिर्भरता के सहारे और पूर्वापेक्षा भिन्न जीवन की इच्छा से पहले जैसी हालत में नहीं रहना चाहतीं और ऐसी नारियों की संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसा परिवर्तन केवल नारी की ही इच्छा से नहीं आया। अधिकांश पुरुष भी नये ढंग के जीवन की इच्छा और जीवन के स्तर के साथ आवश्यकताओं के बढ़ जाने से पुराने ढंग के गृहस्थ और सन्तानों का सिलसिला नहीं चाहते। सभी देशों में बहुसंख्या ऐसे ही सीमित साधन लोगों की है, जिन्हें सेक्स की जरूरत तो है परन्तु उनके लिये सेक्स सम्बन्धों का प्रयोजन बदल गया है या जो सेक्स की जिम्मेवारियों और फल से बचे रहना चाहते हैं। ऐसे लोग किसी हद तक सेक्स साहित्य और सेक्स फिल्मों से भी अपनी सेक्स प्रवृत्ति को मानसिक रूप से पूरा करने का या उस प्रवृत्ति को बहला लेने का यत्न करते हैं। इसी कारण बाजार में ऐसे साहित्य की मांग बढ़ रही है। जो मांग समाज की परिस्थितियों की

जरूरतों से पैदा हो रही है, उसे पूरा करने वाले लेखक को कैसे दोष दिया जाये ?

कहा जा सकता है कि समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना से लेखक को सामयिक बहाव में न बह कर समाज कल्याण के विचार से नैतिकता और सुरुचि की रक्षा करना चाहिये। सिद्धान्ततः यह सलाह ठीक हो सकती है परन्तु सवाल है, क्या आज सेक्स साहित्य की मांग पूरा करना समाज के लिये हानिकारक है ? समाज का हित किस बात में है ? समाज के लिये सबसे बड़ा खतरा क्या है ? इन सवालों से और सवाल उठ जाते हैं। संसार के बहुत से ज्ञानी समाजशास्त्री और वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे हैं कि आज संसार को एटमबमों के विस्फोट की अपेक्षा जनसंख्या के विस्फोट से कहीं बड़ा खतरा है। हमारा देश और मौरिशस भी जनसंख्या की बढ़ती से व्याकुल हैं। भारत में आबादी की तेज बढ़ती ने उत्पादन की हमारी सराहनीय सफलताओं को निरर्थक कर दिया है। भारत की बात क्या, अमरीका की आबादी भारत से एक तिहाई है और धरती भारत से तीन गुणा। उनके अन्य साधन भारत की अपेक्षा कहीं ज्यादा हैं लेकिन अमरीका भी अपनी आबादी में बढ़ती की रफ्तार से परेशान है। आज संसार के सभी देशों की सरकारें अपने भविष्य के विचार से जनसंख्या की बढ़ती रोकने की कोशिश कर रही हैं।

आबादी की बढ़ती के खतरे को मानव-समाज ने स्वयं अपने विकास की कोशिशों और चिकित्सा विज्ञान की सफलताओं से पैदा किया है। हमारे चिकित्सा विज्ञान ने समाज में मृत्यु संख्या को बहुत कम कर दिया है। यह सही है कि विज्ञान ने अब जन्म संख्या को काबू में रखने के तरीके भी खोज लिये हैं। सर्वसाधारण ने बीमारी और मौत से बचने के तरीकों को जल्दी अपना लिया परन्तु अपनी पुरानी मान्यताओं और संस्कारों के कारण सन्तान निरोध के तरीकों को जल्दी नहीं अपना रहे हैं। परन्तु इस आवश्यकता को अनुभव करके सभी देशों में सन्तान निरोध का प्रचार

किया जा रहा है। भारत की जनता को समझाया जाता है—अपनी सेक्स प्रवृत्ति को इस तरह पूरा करो कि सन्तान का खतरा सिर पर न आये। इस बात पर ध्यान दीजिये कि कोई सरकार यह नहीं कहती कि सेक्स की जरूरत को पूरा न करो ! ऐसी बात गांधी जी कहते थे। हजारों साल से दूसरे संत भी कहते रहे परन्तु संयम के उपदेश निष्फल रहे। दुनिया जानती है, मनुष्य की सेक्स प्रवृत्ति के दमन से काम नहीं चलेगा। दमन से वह और भी खतरनाक रास्ते ले सकती है। समाज की रक्षा केवल सेक्स तृप्ति को निष्फल बना सकने में या सेक्स प्रवृत्ति को दूसरे तरीके से बहला सकने में है। सस्ता सेक्स साहित्य दिल बहलाव और मनोरंजन के दूसरे साधनों की तरह साक्षर मनुष्यों की सेक्स प्रवृत्ति को बहला सकने का कारगर साधन है इसलिये वर्तमान परिस्थिति में समाज में एक स्तर के लोगों के लिये ऐसा साहित्य आवश्यक है और अन्ततः समाज के लिये कल्याणकारी। यह जरूरी है कि ऐसे साहित्य में भी सुरुचि और कलात्मकता का ध्यान रखा जाये। ऐसे साहित्य के स्तर को सुधारने का उपाय सामान्य जन के सांस्कृतिक स्तर का सुधार ही हो सकता है। ऐसे साहित्य का दमन नहीं।

पाकिस्तान के उच्चायुक्त महामहिम अनवर खां ने प्रश्न किया—क्या पूरे वर्तमान भारतीय और हिन्दी साहित्य में सिर्फ इगेलिटेरियन सोसाइटी और सेक्यूलर नजरिये (वर्गहीन सम-स्तर समाज और लोकायत दृष्टि-कोण) के लिये ही रुझान और प्रेरणा है, दूसरी प्रवृत्तियां नहीं हैं ?

उत्तर दिया—मेरा यह मतलब नहीं था कि वर्तमान भारतीय साहित्य में केवल एक ही प्रवृत्ति या प्रेरणा के लिये प्रयत्न है। भारत में लेखकों का रेजीमेंटेशन या लेखकों को आदेश और निर्देश में रचना करने की स्थिति या मजबूरी नहीं है। सभी लेखकों की रुचि समझ और मान्यताएं एक सी हो जाना भी असम्भव है। खोज करने पर आधुनिक प्रकाशनों में बहुत प्रतिक्रियावादी, (रिएक्शनरी) अतीत की मान्यताओं

को फिर जमाने के स्वप्न देखने वाली रचनाएं भी मिल सकेंगी परन्तु वे इतनी कम हैं कि उनकी चर्चा नहीं होती। मेरा अभिप्राय है कि हमारे साहित्य की मुख्य और व्यापक प्रवृत्ति और प्रेरणा सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर लोकायत (सेक्यूलर) दृष्टिकोण से वर्ग भेद हीन, सम अवसर, राष्ट्रीय अधिकार के समाज की व्यवस्था के लिये है।

एक और प्रश्न—वर्तमान भारतीय या हिन्दी लेखक अपनी परम्परागत भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये क्या प्रेरणा देता है?

उत्तर—संस्कृति का प्रयोजन निरंतर परिमार्जन द्वारा व्यक्ति और समाज को उत्तरोत्तर विकास और सुधार में सहायता देकर अधिक समर्थ, सन्तुष्ट बनाना है। भारतीय लेखक जानता है कि समाज की संस्कृति की जड़ें समाज के ज्ञान में रहती हैं। मनुष्य समाज के ज्ञान को समाज की भौगोलिक सीमाओं से सीमित कर देना या जकड़ देना उचित नहीं माना जायेगा। ऐसी हालत में समाज की संस्कृति को भौगोलिक या राष्ट्रीय सीमाओं से बांध देना कैसे उचित कहा जायेगा? भारतीय संस्कृति का अर्थ भारतीय समाज के कई सौ बरस पूर्व के ज्ञान की सीमायें और पुराने रिवाज़ और तरीके ही नहीं हैं। दातून से दांत मांजना, मिट्टी से हाथ धोना, जांत-पांत की मान्यताएं या बैलगाड़ी की सवारी ही भारतीय संस्कृति नहीं है। जीविका उपार्जन के ढंग, वेश, रिवाज़ वगैरा मनुष्य समाज के ज्ञान और बदलती आवश्यकताओं के अनुकूल बनते बदलते हैं। विकासशील संस्कृतियां नदियों की तरह होती हैं जो न केवल अपने लिये अनुकूल रास्तों से बहती हैं बल्कि अपने लिये रास्ते भी बनाती हैं। नदियों में नित्य नया पानी आता रहता है परन्तु नदी का नाम अस्तित्व बना रहता है। भारतीय संस्कृति का अर्थ केवल पुराने भारत के रस्म-रिवाज़ नहीं, हमारे समाज की उदार चिन्मयता है। जिसका अर्थ है, स्वतंत्र चिंतन और निरंतर चिन्तन—विश्लेषण की प्रेरणा विभिन्न दृष्टिकोणों और विचार-धाराओं में सहिष्णुता, सह-अस्तित्व, संतुलन

और समन्वय । कोई भी विकासशील संस्कृति नये ज्ञान और उसके अनुकूल विश्वास और मान्यताओं में संशोधन की आवश्यकता से इन्कार नहीं कर सकती । सूक्ष्म अन्तर चेतना, अबाध मुक्त चिंतन और लोकायत बुद्धि का संतुलन और समन्वय ही सब संस्कृतियों और भारतीय संस्कृति का मूल है । भारतीय लेखक उसी को श्रेय संस्कृति मानता है, पुराने रस्मोरिवाज़ के लिये जिद्द को नहीं ।

साम्प्रदायिक राजनीति

श्रमिक संघ के जनरल सेक्रेटरी, द्वीप के प्रमुख मज़दूर नेता श्री बद्री की चर्चा पहले भी कर चुका हूँ । द्वीप में पहुँचते ही उनसे परिचय हो गया था । प्लेन मायां समाज कल्याण केन्द्र में उनकी समिति की ओर से ही निमंत्रण था । मौरिशस-सोवियत मैत्री संघ की बैठक में तथा अन्य अवसरों पर भी भेंट हो चुकी थी । श्रमिक संघ की समिति के दफ्तर में फरवरी के प्रथम सप्ताह के अंत में डिनर पूर्व निश्चित था ।

द्वीप में संयुक्त दलों की सरकार है । विधान सभा में मज़दूर दल का बहुमत है । प्रधान मंत्री रामगुलाम, योजना मंत्री खेर जगतसिंह और दूसरे कई मंत्री मज़दूर दल के पुराने सदस्य और कार्यकर्त्ता हैं । बद्री भाई भी मज़दूर दल के पुराने कार्यकर्त्ता, विधान सभा के सदस्य और द्वीप के प्रमुख कम्युनिस्ट नेता हैं । अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन से भी उनका सम्बन्ध है । देश-विदेश के श्रमिक आन्दोलनों से परिचित हैं, कर्मठ व्यक्ति । भारत में सन् १९७२ के चुनावों के समय देश के मज़दूर वर्ग का समर्थन पाने के लिये कांग्रेस (शासक दल) ने बद्री भाई को भारत में भी बुलाया था । इस डिनर में भीड़ भब्बड़ न था । गिने-चुने आमंत्रितों में भारतीय उच्चायोग के प्रथम सचिव राय, सोवियत दूतावास के प्रथम सचिव दोरोनित्सिन भी थे ।

मैं जानना चाहता था, मौरिशस के मजदूर दल को द्वीप के विभिन्न

समाजों की जनता का कैसा सहयोग मिल रहा है।

बद्री महाशय ने संगठन के विषय में विस्तार से बताया—अंतिम स्पष्ट बात थी—मज़दूरों की समस्याएं मुख्यतः जीवन निर्वाह की या आर्थिक होती हैं परन्तु आर्थिक समस्याओं के सुलझाव के लिये राजनैतिक प्रभाव या शक्ति भी ज़रूरी होती है। हम द्वीप की राजनीति से निरपेक्ष नहीं रह सकते। दल के नियमानुसार सभी मौरिशसवासी वर्ण, नस्ल और साम्प्रदायिक भेद के विचार के बिना मज़दूर दल के सदस्य हो सकते हैं हमारा दल एक राजनैतिक संगठन भी है। हम दूसरे राजनैतिक दलों से सम्बद्ध लोगों को अपने दल में नहीं लेते। हमारे दल में हिन्दू, तमिल, कलर्ड-कैथोलिक (क्रिओल) और कुछ चीनी भी हैं परन्तु हमारे दल में मुस्लिम नहीं हैं। कारण है कि यहां के मुसलमानों ने अपना पृथक साम्प्रदायिक राजनैतिक दल बनाया है। जो लोग आर्थिक और राजनैतिक प्रश्न को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखते हैं, उन प्रश्नों को पृथक साम्प्रदायिक समाज के रूप में हल करना चाहते हैं, उनसे हमें सदा खतरा है। हम मजदूरों या प्रजा की आर्थिक-राजनैतिक समस्याओं को मौरिशसी के रूप में देखते हैं। अपने संगठन और कार्यक्रम को बिलकुल सेक्यूलर रखना चाहते हैं, उसमें कोई साम्प्रदायिक दृष्टिकोण, लक्ष्य या साम्प्रदायिक विश्वास का प्रश्न नहीं आने देना चाहते। जो लोग ऐसे प्रश्नों को साम्प्रदायिक दृष्टि से देखते हैं, उस आधार पर सहयोग चाहते हैं वे हमारे संगठन में या अलग संगठन या गुट्ट बना कर हमारे लिये फूट का संकट पैदा कर देंगे।

दौरोनित्सिन ने समझाना चाहा—मज़दूर मात्र एक वर्ग है और उनके हित एक हैं। मज़दूरों में साम्प्रदायिकता के नाम पर भेद और फूट का कारण साम्राज्यवादी ब्रिटिश, फ्रेंच और अमरीकन पूंजीपतियों की कूटनीति का प्रभाव है। द्वीप के सभी मज़दूरों को एक झंडे के नीचे, एक संगठन में लाना ज़रूरी है।

साम्राज्यवादियों और पूंजीपतियों से मजदूरों में फूट डालने की आशंका सदा रहेगी—बद्री ने स्वीकारा। जो लोग उनके बहकावे में आने के लिये तैयार हों उनका हमें क्या भरोसा ? वे हमारे दल में सम्मिलित हो कर बहक जायें तो हमारे लिये संकट बन जायेंगे। जान बूझकर ऐसा खतरा क्यों लिया जाये ?

बद्री महाशय को यह बहस उपयोगी न लग रही थी। मैं कहे बिना न रह सका—समाज की आर्थिक-राजनैतिक समस्याओं को साम्प्रदायिक या पारलौकिक कार्यक्रमों से हल नहीं किया जा सकता, न ऐसी समस्याओं और कार्यक्रमों के लिए साम्प्रदायिक संगठनों की कोई संगति हो सकती है। हमारा देश राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के हल के लिये साम्प्रदायिक आधार के संगठनों के संघर्षों से अनेक बार लक्ष्य भ्रष्ट होने के अनुभव पा चुका है। साम्प्रदायिकता को अपने संगठन से दूर रखने के लिये मौरिशस के मज़दूर दल की सावधानी सर्वथा उचित है। मेरी सहमति से बद्री महाशय ने संतोष अनुभव किया।

गिने चुने उपस्थितों में युगांडा से आये एक भारतीय दम्पति भी थे। सज्जन ने अपना पेशा डाक्टर बताया। दम्पति के चेहरों पर उदासी का भारीपन था या ह्विस्की का तनाव; सन्देह ही रहा। ह्विस्की के घूटों से गले का अवरोध दूर कर युगांडा में भारतीयों पर भयंकर अत्याचार की चर्चा भीगे स्वर में सुना रहे थे। उन्हें भरा-पूरा मकान और बैंक में बड़ी रकम छोड़ कर अपनी जान बचा कर भाग आना पड़ा था।

राय और नन्दलाल के प्रश्नों से बात चल रही थी—डाक्टर ने युगांडा में अपनी औसत आय चार हजार पौंड मासिक (औसतन सत्तर-बहत्तर हजार रुपये) बतायी। डाक्टर की आयु के विचार से सन्देह हुआ ह्विस्की बोल रही है। आय युगांडा से बाहर भेजने का प्रतिबन्ध लग जाने के बाद से आमदनी का चौथाई भी बाहर भेजना कठिन हो गया था। उनका परिवार तीन पीढ़ी से युगांडा में था। डाक्टर अपनी आय

इंगलैंड के बैंक में जमा कर रहे थे। इंगलैंड में पांच-छः लाख पाउण्ड जमा बताया। गनीमत कि स्थिति बिगड़ने की आशंका से पत्नी और बच्चों को कुछ माह पूर्व मौरिशस भेज चुके थे। पत्नी ने केरपिप में आइस्क्रीम का एक छोटा-मोटा धंधा सवा लाख रुपये में खरीद लिया था। डाक्टर ने गहरी सांस से संतोष प्रकट किया। मौरिशस में भारतीय सुरक्षित हैं, मौरिशस में बस जाने का विचार भी प्रकट किया।

मौरिशस में भारतीय सुरक्षित हैं क्योंकि मौरिशस उनका अपना देश है। नन्दलाल बोले—यहां भारतीय मौरिशस को लूट कर धन बाहर भेजने के लिये नहीं रहते। जो लोग किसी देश में तीन-तीन पीढ़ी तक विदेशी बने रहें, अपनी आय बाहर भेजते रहें, उन्हें देश की नागरिकता का क्या दावा ? युगांडा की तरह लुटते रहना मौरिशस को भी मंजूर नहीं होगा।

बद्री महाशय ने बात संभाली—इस द्वीप में बसने या निश्चित अवधि तक रहने के लिये भी कुछ कायदे-कानूनों के अनुसार अनुमति लेना जरूरी होता है।

सतरंगी धरती

शामरेल देखने के लिये पहले दो बार चले थे। दोनों बार आधे रास्ते पहुँचते तक इतनी वर्षा, जैसे सामने सड़क पर पानी की दीवार। आगे कुछ देख सकना असम्भव। ऐसी स्थिति में गाड़ी कैसे बढ़ती। उस सड़क पर बहुत मोड़ और घुमाव भी हैं। वैसी वर्षा में मंजिल पर पहुँच कर भी देख क्या पाते ? बेबसी में लौट कर आराम कुर्सी पर टेलीविज़न फिल्म देखते बात-चीत में समय गुजारने की मजबूरी। इधर बरसों से फिल्म देखने के लिये सिनेमा तक जाने का उत्साह नहीं होता। मौरिशस के टी० वी० पर कई भारतीय फिल्में देख लीं। टेलीविज़न पर ही हज (मक्का का तीर्थ यात्रा) का सवाब (पुण्य) न सही परिचय पा लिया।

नन्दलाल का आग्रह था शामरेल देखना ही चाहिये। तीसरी बार मौरिशस की प्रकृति ने लिहाज़ किया। शामरेल पहाड़ी के ऊपर घनी हरियावल से घिरा रंगीन बजरी-कंकड़ का दो-ढाई फर्लांग का विस्तार है। उसमें अनेक रंगों की मिट्टी या बजरी की मेड़ें या कहिये माटी-बजरी के इन्द्रधनुषों का मैदान। स्थानीय बोल-चाल में इसे इन्द्रधनुषी खेत या मैदान ही कहा जाता है। वास्तव में शामरेल लाखों वर्ष पूर्व सागर में हुए ज्वालामुखी विस्फोट का अवशेष या स्मृति है। भूगर्भ वैज्ञानिकों के अनुसार सम्भवतः द्वीप उसी विस्फोट की देन है। मिट्टी के इन इन्द्रधनुषों में आकाशी इन्द्रधनुषों की वायवीय उजली कोमल आभा नहीं; ठोस परन्तु रंगीन धरातल का आभास है। रंगों का वैचित्र्य विस्मय-जनक, चट्टानी लाल, सलेटी, नीले, काले, हल्के ऊदे, गेरू, धौले रेतीले, भूरे, हरियावल छांव रंग लिये बजरी या मिट्टी की दूर तक चली गयी मेढ़े या रीढ़ें।

उस ऊंचाई से सूर्य को नित्य उदरस्थ करने में समर्थ नीले सागर का अनन्त विस्तार और उस पर बिदा लेती किरणों में सातों रंगों के फट कर बिखर जाने से अवर्णनीय होली, क्षण-क्षण प्रकाश के मन्द होने से नीले-काले अनन्त में समाहित होती। सचमुच इस अकल्पनीय दृश्य से वंचित रह जाना दुर्भाग्य होता।

द्वीप में तीन सप्ताह रह चुके थे। बहुत कुछ देख-सुन लिया था परन्तु अघा नहीं गये थे। द्वीप का प्राकृतिक परिवेश और संयोजन ऐसा है कि उसे दो-चार बार देख लेने से मन अघा नहीं जायेगा परन्तु जीवन के दूसरे तकाजे भी हैं। पहले विचार था, तीन फरवरी को वापिसी का। उसमें अड़चन आ गयी। योजना मंत्री खेर जगतसिंह १७ जनवरी चीन जाते समय कह गये थे—उनकी अनुपस्थिति में न लौट जायें। वे दो फरवरी तक न लौटे।

मौरिशस और बम्बई के बीच केवल दो उड़ानों से सम्पर्क है। पहले केवल एक ही उड़ान थी, यान बम्बई से मंगलवार रात दो बजे चलकर बुधवार सुबह (मौरिशस के समय से ६ बजे) पहुँचता था। दो घंटे बाद मौरिशस के समय अनुसार आठ बजे चलकर बम्बई के समय से दोपहर बाद साढ़े तीन बजे वापिस बम्बई प च जाता। अब शनिवार मध्याह्न में एक बजे भी बम्बई से यान चलता है और मौरिशस से रात आठ बजे उड़ कर बम्बई रविवार सुबह साढ़े तीन बजे लौट आता है।

खैर जगतसिंह सात फरवरी सुबह लौटे। हम लोगों ने दस फरवरी संध्या के यान में स्थान आरक्षित करवा लिये।

वाकोआ से प्लेज़ांस हवाई अड्डे के लिये चले। केरपिप में हल्की फुहार थी परन्तु पांच मील आगे भारी वर्षा। बूंदों की वर्षा नहीं, प्रपातों से वर्षा। यान के टाइम के विचार से ठहर जाना भी सम्भव न था। गाड़ी की धुन्ध-भेदी बत्तियां जलाकर रेंगते चलने की मजबूरी। शायद मौरिशस के बादल हमारे निश्चय की परीक्षा ले रहे थे। वर्षा का ज़ोर घटा या दस मिनट रेंग कर उस प्रपात से बाहर निकल आये और पश्चिम क्षितिज से संध्या की किरणें मुस्कराने लगीं।

प्लेजांस पहुँचे। उस वर्षा में भी अनेक सज्जन और महिलायें विदा देने के लिये हवाई अड्डे पर आये थे। यान छूटने में समय था। प्रतीक्षालय में बैठे रहे।

प्रतीक्षालय से चलने के लिये उठे। एक युवती बोली—"आप लोग अभी क्यों चल दिये ? आपका इतनी जल्दी चल देना खल रहा है। अभी ठहरना चाहिये था। आये थे तब से बहुत अच्छे लग रहे हैं।"

सीने पर हाथ रख कर उत्तर दिया—"काश, यह बात आपने दो दिन पहले कही होती। यान में स्थान आरक्षित करवाने की उतावली न करते......।"

अट्टहास से विदाई।

मौरिशस की जलवायु का प्रभाव केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही नहीं, मन पर भी ऐसा था कि उतनी छोटी जगह के लिये चार सप्ताह भी कम लगे ।